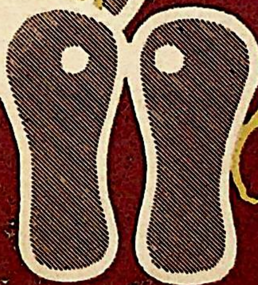
12.1

मांडवी एक विस्मृता







सरोज गौरिहार

रामायण की नारी पात्रियों में एक बार लक्ष्मण-प्रिया 'उर्मिला' की चर्चा चली थी। स्व० मैथिलीशरण जी ने और फिर विशेषरूप से स्व० बालकृष्ण जी शर्मा 'नवीन' ने उर्मिला महाकाव्य की रचना करके उस कमी को पूरा किया। तभी से मेरा ध्यान माण्डवी के प्रति आकर्षित हुआ था। माण्डवी और भरत दोनों एक दूसरे से बहुत दूर न रहते हुए भी चौदह वर्षों तक बहुत दूर रहे थे। यों भरत के मन में जिस तरह राम उसी तरह माण्डवी के मन में रामभक्त भरत नित्य विराजमान थे। माण्डवी का विरह कर्तव्य और अनुशासन की मर्यादाओं के अंतर्गत रह कर ही काव्य का विषय बन सकता था। सरोज बहन की क़लम ने माण्डवी का चरित्राङ्कन जिस संयम सधी टीस के साथ किया है वह मेरी कल्पना की माण्डवी को जगह-जगह छू गया। माण्डवी काव्य मुझे बहुत ही रुचिकर और मनःतोष-दायक लगा। मेरा विश्वास है, यह काव्य-रचना सरोज बहन की कीर्ति में अवश्य ही चार चांद लगायेगी। राम करे ऐसा ही हो।

अमृतलाल नागर

પાણિની કન્યા
વિદ્યાલય
ને
શુભકામના સહિત
સરોજ ગીરધર
૨.૭.૬૯.

मांडवी
एक
विस्मृता

सरोज गौरिहार



प्राप्ति स्रोत : रानी सरोज कुमारी गौरिहार
११, विंडसर प्लेस, लखनऊ

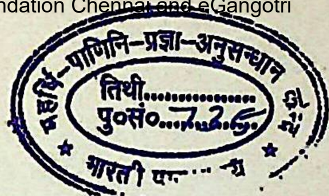
●

●

प्रथम संस्करण : १९७६
मूल्य : दस रुपया

●

मुद्रक : साथी प्रेस, लखनऊ
आवरण सज्जा : श्री एन० एन० राय



मांडवी को ही—

जो स्वयं है साधना,
साधना कर लूं उसी की।
गीत उसके, भाव उसके,
यह मुखर वाणी उसी की।



बात अपनी

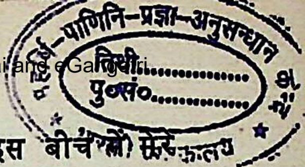
मांडवी शायद आज विस्मृता नहीं है। प्रस्तुत रचना के आरम्भ होने से लेकर अब तक पिछले पांच-छ वर्षों में समय-समय पर उसकी यथेष्ट चर्चा हुई है। किन्तु जिस समय रामायण की पंक्तियों के बीच से मांडवी ने प्रथम बार झांक कर मेरी ओर देखा था उस समय तक वह पूर्ण रूप से विस्मृता ही थी। तब से अब तक वह कैशोर्य काल का परिचय दृढ़ स्नेह सम्बन्ध में परिवर्तित हो गया है। रामायण के अन्य पात्रों की ओट में छिपी मांडवी को बार-बार इस मन ने देखा और परखा है और अपने अति निकट पाया है।

श्रद्धेय मैथिलीशरण जी के साकेत को पढ़कर एक सुखद अनुभूति हुई थी उसमें मांडवी का नाम पाकर। परन्तु उर्मिला की भांति उस पर भी कोई लिखे यह आकांक्षा मन में बार बार उठती थी। स्वयं लिखने की तब तक कल्पना भी नहीं की थी। अचानक सितम्बर'६९ में आदरणीय नवीन जी की 'उर्मिला' हाथ में आते ही वह पुरानी सोई पड़ी आकांक्षा फिर से जाग उठी। 'उर्मिला' को पढ़ पाना मेरे लिये कठिन हो उठा। दो चार पृष्ठ पढ़ कर मैंने उसे रख दिया। उसी समय अंतिम अध्याय से इस रचना का आरम्भ हुआ।

दो-तीन महीने में ही कहीं बस में बैठे-बैठे, कहीं रेल की यात्रा में यह रचना समाप्त भी हो गयी। कभी बीच से तो कभी आरम्भ, इस प्रकार अटपटे ढंग से यह लिखी गई है।

हो सकता है वह विश्रंखलता अभी भी इसमें हो। काव्य की दृष्टि से यह कहां तक खरी उतरेगी मैं नहीं जानती, किन्तु भाव की दृष्टि से जो कुछ भी कहने का प्रयत्न किया है उसका अंश मात्र भी यदि पाठकों के मर्म को छू सका तो मैं अपना लेखन सफल समझूंगी।

जहां तक कथा का प्रश्न है मैंने अपनी कल्पना को पूरी छूट दी है। यथेष्ट प्रयत्न करने पर भी मांडवी के विषय में इससे अधिक ज्ञात न हो सका कि वह राजा जनक के भाई कुशध्वज की पुत्री थी और भरत से उसका विवाह हुआ था। स्व० श्री बलदेव प्रसाद मिश्र ने अपने काव्य भरत में मांडवी की कुछ चर्चा की है किन्तु वह मेरी कल्पना से मेल नहीं खाती। प्रस्तुत रचना मांडवी के कैशोर्य काल से आरम्भ होती है। राम को देख कर, और 'भरत राम ही की उनहार' यह सखि का कहना सुन कर मांडवी के मन में एक कल्पना जागती है, एक चित्र उभरता है साथ ही उत्सुकता भी 'कैसे होंगे वे भरतपिया?' मांडवी के अन्तर में भरत के प्रति स्नेह का बीज यहीं से जम जाता है। तत्पश्चात विवाह, भगिनी वियोग, चित्रकूट और लौट कर अयोध्या का एकांकी जीवन इन सबको छूती हुई यह रचना राम के बनवास से लौटने पर भरत व मांडवी के पुनः मिलन पर समाप्त होती है। भरत और मांडवी, राम और सीता से इतना जुड़े हुए हैं कि इनके बिना मांडवी की बात कह पाना सम्भव ही नहीं है अतः राम कथा इसमें स्वतः आ गई है।



रचना ६९ में ही पूरी हो गई थी। इस बीच मेरे स्नेही मित्रों का सतत आग्रह भी रहा कि यह जल्दी प्रकाशित हो। इस संदर्भ में यदि लौड़ी क्षेत्र, जिला छतरपुर, मध्य प्रदेश की चर्चा न करूं तो उचित न होगा। वहां के निवासियों का सा काव्य प्रेम कम ही देखने में आता है। दो एक स्थानों पर कुछ अंश सुनाने पर प्रस्तुत रचना की चर्चा बड़े जोरों से फैली। प्राय सभी ग्रामवासियों का आग्रह था कि इसे शीघ्र प्रकाशित करवाऊं। एक ग्राम पंचायत ने तो इस सम्बन्ध में विधिपूर्वक प्रस्ताव पास कर के मेरे पास भेजा था। ऐसा स्नेह व सौभाग्य शायद ही किसी विधायक को मिला हो। किन्तु इतने आग्रह के उपरांत भी तथा इच्छा, सुविधा और साधन होते हुये भी इसके प्रकाशन में विलम्ब हो ही गया।

पुस्तक के नाम को लेकर मेरे कुछ मित्रों को आपत्ति थी। किसी ने 'विस्मृता' और किसी ने केवल 'मांडवी' नाम रखने का सुझाव दिया। किन्तु मैं समझती हूं इन दोनों शब्दों का यह समन्वय ही मेरे भाव को पूर्ण अभिव्यक्ति देता है।

श्री लक्ष्मीशंकर जी मिश्र 'निशंक' के सहयोग के लिये तथा आवरण सज्जा के श्री एन० एन० राय की मैं आभारी हूं। अंततः आदरणीय श्रीनारायण जी चतुर्वेदी के आशीर्वाद, सरल स्नेही श्री अमृतलाल नागर व पूज्य पिता श्री

जगनप्रसाद जी रावत के प्रोत्साहन से यह पुस्तक प्रकाशित हो ही गई अब जो कुछ भी कहना है यह स्वयं कहेगी—

भरत पत्नी का अनुग्रह, प्रेरणा कुछ उस जनम की,
मिल गया पथ, छन्द में गा, कह सुनाई बात मन की।

उस मनस्विनि माण्डवी की भाव छाया मिल गई जब,
रह न पाई मौन फिर, चल पड़ी कविता डगर पर।

एक कन भी भरत रानी के हृदय की वेदना का,
झलक पाया, सफल होगा, जन्म मेरी प्रेरणा का।

३१-१-७६ सरोज

प्राक्कथन

रामायण लोकोत्तर काव्य है। वह इतिहास भी है और धार्मिक ग्रन्थ भी। उसके नायक मर्यादा पुरुषोत्तम राम हैं और यह स्वाभाविक है वे ही उसकी कथा के केन्द्र हैं और जगज्जननी सीता का चरित उनके साथ उस महाकाव्य में उभरा है। किन्तु सहृदय पाठकों और साहित्य मर्मज्ञों को उस महाकाव्य से भरत का चरित्र अत्यन्त चित्ताकर्षक और उदात्त एवं प्रेरणास्पद मालूम होता रहा है। भरत की चर्चा करते हुए बाल्मीकि ने गुह से कहलाया है।

धन्यस्तं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगती तले।
अयत्नादागतं राज्य यस्त्वं त्यक्तमिहेच्छसि ।।

स्वयं दशरथ ने भरत के सम्बन्ध में कैकयी से कहा था—

रामादपि हितं मन्ये धर्म्मतो बलवत्तरम।

तुलसीदास जी ने तो स्वयं भगवान राम के मुख से कहलाया है—

जो न होत जग जनम भरत को
सकल धरमधुर धरनि धरत को?

यहां भरत के संबंध में अधिक चर्चा करने का अवकाश नहीं है, उनके महत्व की ओर इंगित कर देना ही पर्याप्त है। राम तो बन के कष्ट सहते रहे। उनके साथ लक्ष्मण और सीता ने भी जो कष्ट सहे वे सर्वविदित हैं। किन्तु भरत ने

दोहरे कष्ट सहे। उनकी ओर सामान्य जन कम ध्यान देते हैं। 'धर्म्मतो बलवत्तरम्' भरत को अपनी जननी के कारण किये गये दुखद अन्याय की ग्लानि और क्षोभ तथा अपने भाइयों और मातृ-तुल्य भौजाई के बनवास के कष्टों का सतत स्मरण उन्हें मानसिक रूप से दुसह कष्ट दे रहा था। वे राम के अनुगामी होने के कारण नन्दिग्राम में, राजकीय वैभव, सुख और सुविधाओं का परित्याग कर, स्वेच्छा से तापस जीवन व्यतीत और ब्रह्मचर्य ब्रत का पालन कर रहे थे। इस मानसिक और शारीरिक कष्ट के साथ वे अनासक्त भाव से, किन्तु पूर्णनिष्ठा और दक्षता से, अवध के राज्य का—राम की धरोहर के रूप में—प्रशासन भी कर रहे थे। शत्रुघ्न भी उनके अनुगामी थे। दोनों तपस्वी भेष में नन्दिग्राम में चौदह वर्ष रहे।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर का ध्यान लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला की ओर गया, और उन्होंने कहा कि लक्ष्मण के लम्बे बनवास की अवधि में उस पर जो बीती होगी, उस पर कवियों की दृष्टि नहीं गयी। बात बहुत ठीक थी। अतएव उर्मिला पर कई भाषाओं में कवियों ने छोटे-बड़े काव्य लिखे। बाबू मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत' इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।

लक्ष्मण तो दूर वन में थे। अतएव उर्मिला की विरह व्यथा उनकी अनुपस्थिति के कारण दुखद थी। किन्तु भरत की पत्नी माण्डवी, और शत्रुघ्न की पत्नी श्रुतिकीर्ति तो अपने पतियों से कुछ कोस दूर रह कर भी वही विरह और दुख

अनुभव कर रही थीं जो उर्मिला कर रही थी। शायद उनका दुख अपने पतियों के नैकट्य और राज्य के समस्त सुखों के उपलब्ध होते हुए भी अपने पतियों का तापसी जीवन और ब्रह्मचर्य व्रत उन्हें और भी अधिक कष्टकारक रहा होगा। कवीन्द्र के सुझाव पर लोगों ने उर्मिला की ओर तो ध्यान दिया किन्तु माण्डवी और श्रुतिकीर्ति उपेक्षित ही बनी रहीं।

श्रीमती सरोज गौरिहार ने उपेक्षिता मांडवी पर यह सुन्दर और सफल काव्य लिखा है। विषय प्रायः अछूता है। विनय पत्रिका में तुलसीदास ने भरत की स्तुति में एक ही पद लिखा है। उसमें एक पंक्ति में उन्हें 'मांडवी-चित्त-चातक नवांबुद बरन' कह कर वास्तव में माण्डवी की गहरी पतिभक्ति की प्रशंसा की गयी है। तुलसीदास की काव्यरचना का जो महान उद्देश्य था वह भगवान राम के चरित्र से ही पूरा हो सकता था। आनुषंगिक रूप से भरत, लक्ष्मण, हनुमान आदि के चरित्र चित्रित हुए हैं। तुलसीदास ने जब सुमित्रा पर भी विशेष ध्यान देना आवश्यक नहीं समझा तब माण्डवी, उर्मिला या श्रुतिकीर्ति की ओर ध्यान देने का प्रश्न ही उनके सामने नहीं उठता। यह प्रश्न तो तुलसीदास के उद्देश्य से भिन्न उद्देश्य वाले कृतिकारों के लिये हैं जो 'व्यक्ति' के सुख-दुख ओर मनोभावों के आधुनिक दृष्टि से चित्रण को काव्य का एक महान उद्देश्य समझते हैं क्योंकि इस युग में 'व्यक्ति' प्रधान हो गया है, भले ही वह समाज के प्रतिनिधिरूप में चित्रित किया जाय।

श्रीमती गौरिहार ने कथानक का ताना बाना बड़ी सावधानी से बुना है। मंथरा को केकेयी की बचपन की धाय के रूप में चित्रित कर उसकी भरत को अपनी पोष्य पुत्री के पुत्र को—राज्य दिलाने की कामना बड़ी स्वाभाविक मालूम पड़ती है। केकेयी की आरम्भिक प्रतिक्रिया महारानी के महत्व के अनुरूप है, किन्तु शीघ्र ही वह अपनी धाय के प्रभाव से (जिस पर वह बचपन से आश्रित रहने कीअभ्यस्त है) अपना मत बदल लेती है। दशरथ वरदान मांगने से स्तंभित हो जाते हैं। वे भरत का राज्याभिषेक करने को राजी हैं किन्तु अपने वचन की पूर्ति के लिये राम को चौदह दिन का प्रतीकात्मक बनवास देकर वापस अयोध्या लौटाने को कहते हैं जो कैकेयी को मान्य नहीं है। मांडवी जब सीता के वन गमन का समाचार सुनती है तो कवयित्री ने उसके मुंह से जो उद्गार निकाले हैं वे बड़े उदात्त और मर्मस्पर्शी हैं। फिर जब भरत राम को लौटाने में असफल होकर पादुका लेकर लौटते हैं और नन्दीग्राम में कुटी बना कर रहने का निश्चय प्रकट करते हैं तब मांडवी कहती है—

दासी हूं औ सदा रहूंगी,
विधि विधान जो सभी सहूंगी,
पर न अलग चरणों से रखना,
निज उर व्यथा न कभी कहूंगी।

किन्तु परहित कातर होते हुए भी भरत इसके लिये राजी नहीं होते। वे कहते हैं—

साथ कहूं रहने को कैसे ;
यों ही दुखी मात सारी हैं,
अनुज वधू उर्मिला निहारो,
सूखी बिना नीर क्यारी है।
तुम जाओगी भवन छोड़ यदि,
इनको प्राणहीन पाओगी,
धीरज धर, दो विदा प्रिये अब,
यह क्या ? दृग जल बरसाओगी ?

किन्तु वे मांडवी को 'सह धर्मिणी' बना कर कहते हैं—

कार्य बांट लें, राजमहल का,
सेवा भार प्रिये तुम ले लो,
तात - पादुका निकट बैठ मैं,
करूं काज, यह अवसर दे दो।

इस प्रकार भरत ने बड़ी चतुरता से मांडवी को राजमहल में रहने को सहमत कर लिया और स्वयं तपस्वी के रूप में नन्दिग्राम में रहने लगे।

राम - सिया - पद भरत समर्पित,
भरत - प्रिया भी है ब्रत ठाने,
इधर भरत तो उधर मांडवी,
दोनों तप करते मनमाने।

और उस गृह-तपस्या में

कमल - पत्र राम राजभवन मैं
सुख वैभव के बीच रहीं रह।

किन्तु वह अपने दुःख में डूबी रहने पर भी निष्क्रिय नहीं रही। यद्यपि

परिधान श्वेत, नहिं तन आभूषन
काट रही दिन कठिन वियोगिन।
साध रही साधना, नियम, व्रत,
पिया साथ में बनी तपस्विन।

तथापि वह उसी तरह अपनी सासों और देवरानियों को प्रबोध देती रही जिस प्रकार हरिऔध के 'प्रिय प्रवास' की राधा—

जब बैठी होतीं राम मात
ले गोद उर्मिला वधू, दुखी,
तब राम लखन की गाथाएं
गा - गा करती उन्हें सुखी।

इतना ही नहीं, वह सारे राम वियोग में दुखी अयोध्या-वासियों की भी खोज-खबर रखती और उन्हें सान्त्वना देती। परिणाम यह हुआ कि—

अन्नपूर्णा भरत - प्रिया, शुचि
धर्म - कर्म का मंत्र दिया है।

सुख की छाया में पनप रही—
नगरी, कुछ ऐसा जंत्र किया है।

मांडवी के चरित्र को कवियत्री ने इतना परोपकारी, संयमित, समर्पित, तपस्वी और उदात्त चित्रित किया है कि पाठक उससे सहमत होने को विवश हो जाता है कि—

महिमा अमित भरत - पत्नी की
मिथिला लली, सिया - भगिनी की।
दोनों कुल की ज्योति बनी वह
रखती प्रीति नीति निज प्रिय की।

भरत ऐसे लोकोत्तर चरित्र वाले महापुरुष की पत्नी की भूमिका उसने जिस सुन्दरता से निबाही उसके कारण उपर्युक्त कथन बहुत समीचीन मालूम होता है।

यद्यपि यह काव्य माण्डवी पर है और वही इसकी नायिका है तथापि वह बनवास-गमन और भरत के राम को लौटा लाने के प्रयास के वृहद् चित्र के महत्वपूर्ण अंश के रूप में चित्रित की गयी है। वह नायिका होते हुए भी इस विशाल और सुन्दर चित्र के मध्य में नहीं है। जिस प्रकार जीवन में मांडवी ने अपने को औरों के पीछे रखा, इसी प्रकार इस काव्य में भी वह मंच के मध्य में प्रमुख रूप से प्रदर्शित नहीं की गयी। यह मांडवी के चरित्र के अनुकूल ही है।

शायद हिन्दी में माण्डवी पर यह प्रथम काव्य है। इस कथा-प्रधान काव्य में कथा की जो रोचकता और वार्तालापों का जो सौन्दर्य होना चाहिए वह इसमें प्रचुर मात्रा में है। भाषा बड़ी सरल और प्रवाहपूर्ण है। किन्तु ऐसा मालूम पड़ता है कि पुस्तक शीघ्रता से छपाई गयी है और उसे दुहराने का भी अवकाश नहीं मिला जिससे कहीं-कहीं छंद सम्बन्धी त्रुटियां रह गयी हैं जो अगले संस्करण में ठीक की जा सकती हैं। किन्तु ये त्रुटियां ऐसी नहीं हैं जो काव्य के सौष्ठव को कम कर सके।

माण्डवी पर इतना सुन्दर और इतना बड़ा खण्ड काव्य लिखने के लिए श्रीमती सरोज गौरिहार हिन्दी काव्य-प्रेमियों के धन्यवाद की पात्र हैं। उन्होंने उपेक्षिता माण्डवी पर यह सुन्दर काव्य लिख कर एक बड़े अभाव की पूर्ति की है। मुझे विश्वास है कि रामायण की कथा और उससे सम्बन्धित चरित्रों में रुचि लेने वालों को 'माण्डवी' काव्य रोचक, प्रेरक और चित्ताकर्षक मालूम होगा। कवयित्री ने माण्डवी के चरित्र पर ध्यान देकर तथा उसे अपने सरल काव्य में उभार कर अपनी सुरुचि और काव्य सामर्थ्य का अच्छा परिचय दिया है। मैं इस काव्य का हार्दिक स्वागत करता हूं।

—श्री नारायण चतुर्वेदी

मांडवी एक विस्मृता



एक

चपल मृगी सी कौन यहां,
पल एक इधर पल एक वहां।
प्रमुदित मारुत सी मचल रही,
सीता है उसके निकट जहां?

शुचि अधर हास, लोचन चंचल,
मुखरित पग के नूपुर प्रति पल,
है रिझा रही, कुछ खिझा रही,
सीता को कर से छेड़ चपल।

शोभा सुषमा की है भंडार,
है यही मांडवी अति उदार।
है देख जिसे मन मुग्ध हुआ,
वह लगती बासंती बहार।

मांडवी चपल, अति धीर सिया,
वह क्रीड़ा - रत, गम्भीर सिया।
यमुना की तरल तरंगों को,
मानो गंगा ने अंक लिया।

वह बैठ विचार करे मन में,
यह करे गुदगुदी आ तन में।
सीता कुछ हंस कर झुंझलाये,
मांडवी गोल घूमे क्षण में।

जब झूठ मूठ रूठे सीता,
तो लगे उसे सब जग रीता।
आंसू भर तन से लिपट लिपट,
मनुहार करे हो भयभीता।

सौंदर्य - भार से बोझिल वह,
चपला सी स्वर्ण लता सी यह।
थी वायु सदृश दौड़ी फिरती,
फिर हंसती कानों में कुछ कह।

तूलिका लिये सीता फिर जा,
कुछ रंगे चित्र नव भाव सजा।
यह चित्रित छवि पर रचे गीत,
वह सुने और फिर जाय लजा।

उल्लसित प्रकृति सौन्दर्य देख,
जब उठें हृदय में मधुर भाव।
'जीजी वतलाओ तनिक मुझे',
कह उठती उर में लिये चाव।

'क्यों पुष्प शीश हैं हिला रहे ?
क्या तुम्हें रहे इस भांति टेर ?
रच डालो चित्र हमारा भी,
कह रहे प्यार से तुम्हें हेर।'

जब तक उत्तर में एक शब्द,
सीता के अधरों तक आता।
तब तक नव प्रश्नावलियों का,
अविरल तांता लग जाता।

भोले उर की जिज्ञासायें,
मुखरित होतीं मांडवी मुख से।
थी अमिय धार सी बहा रहीं,
सुन मुस्काती सीता सुख से।

थे अगनित प्रश्न और उत्तर,
कुछ होड़ा होड़ी आते थे।
मानो कौतूहल और भाव,
आपस में दौड़ लगाते थे।

हंस कर कह देती वैदेही,
'चुप हो अब मेरी भी सुन ले।
प्रश्नों की वर्षा रोक तनिक,
मुझको भी तो कुछ अवसर दे।'

अल्हड़ वह प्यार भरे स्वर में,
कुछ और अधिक मधु रस घोले।
यह क्या है? यह क्यों है ऐसा?
जिज्ञासा बनी स्वयं बोले।

'क्यों शंकर सा वर पाने को,
तज दिया उमा ने पिता-भवन ?
जंगल का जोगी मन भाया,
तप करने जा बैठी कानन।'

'जीजी क्या वही अपर्णा हैं,
अपने मंदिर में आ बैठीं ?
वह स्वयं पूज्य साधना बनीं,
जन जन के मन में हैं पैठीं।'

'नित ही पूजन अर्चन कर, मां
उनसे क्या मांगा करती हैं ?
दृग मूंद, ध्यान में हो निमग्न,
भावना कौन सी भरती हैं ?'

'और धनुष क्या पूजा घर में,
उन्हीं ईश शंकर का रक्खा ?
जिनको पाने हेतु शिवा ने,
तप का श्रम-रस इतना चक्खा।'

'करनी होती है क्या जीजी ,
सबको कठिन तपस्या ऐसी ?
वमभोले सा वर पाने को ,
की थी मां गिरिजा ने जैसी ।'

'यह तो मां ही बतलायेंगी ,
पर तू क्यों है इतनी अधीर ?
सीता छेड़ कहैं, 'री वहना ,
धर मन में तो तनिक धीर ।'

सकुचा कर, कुछ झुंझलाकर फिर ,
मांडवी भृकुटि तिरछी कर के ।
सीता को चले पकड़ने वह ,
सिय छिपे ओट लतिकांचल के ।

कौतुक ही कौतुक में शैशव ,
गया कहां खो समय विवर में ।
कव हो गयी बड़ी, कब यौवन ,
आया उसके उर आंगन में ।

जान नहीं पायी वह सरला,
वयः संधि पार पग धरती थी।
मुकुलित कलिका सी सकुचाई,
यौवन घट से मधु भरती थी।

सीता भगिनी का प्यार तरल,
संग संग खेले आनन्द विकल।
अति निकट देह मन से दोनों,
रहती थीं साथ साथ प्रति-पल।

भोजन विहार सब कार्य संग,
क्षण को भी हुआ न साथ भंग।
आमोद भरी फिरतीं दिन भर,
बिखराती हास विलास रंग।

जनक नृपति के आंगन की,
शोभा थी अद्‌भुत औ न्यारी।
नित चारु चन्द्रमुख की रहती,
चहुं ओर सदा थी उजियारी।

बिहरें चार चन्द्र आँगन में,
सदा चांदनी नृपति सदन में।
मात सुनयना संग जनक नृप,
क्रीड़ा देख मगन अति मन में।

श्रुतकीर्ति उर्मिला सिया संग,
पुलकित मांडवि के दीप्त अंग।
मणिमय आंगन में मृदु चंचल,
था प्रवहमान वात्सल्य रंग।

भ्रात सुता मांडवी नृपति को,
निज पुत्री सम प्रिय थी सब दिन।
सीता की मां ने भी उसको,
देखा सीता समान प्रति दिन।

धीरे धीरे सब बड़ी हुईं,
सौन्दर्य ज्ञान गुण चढ़ी हुईं।
मानो लक्ष्मी रति संग लिये,
शारद गौरी आ खड़ी हुईं।

देख पिता को भक्तिभाव से,
नित्य धनुष की सेवा करते।
कौतुक वश सीता भी उसके,
पास गई मन में कुछ डरते।

हाथ उठा धनु तोला कुछ पल,
पीछे आया सखियों का दल।
स्नेह सनी सी संग सुनयना,
और मांडवी, उर्मिल कोमल।

देख सिया के हाथ धनुष को,
मात चकित भूलीं सुधि अपनी।
विह्वल दौड़ीं, तुरत बुला नृप,
दिखलायी तनया की करनी।

दृश्य विलक्षण देख सामने,
लगे सोचने वे मन ही मन।
सीता-वर की बने कसौटी,
यही धनुष, उर धार लिया प्रन।

बोले रानी से, 'सुनो प्रिये,
हो गयी जानकी ब्याह योग।
इस घटना में लगता मुझको,
शिव शम्भु कृपा का ही संयोग।'

'है अतः किया मन में विचार,
सिय हेतु स्वयंवर रचूं एक।
लूं तोल सभी का शौर्य वहां,
धनु भंजन की बस रहे टेक।'

'उस धनुष यज्ञ में, कितने ही,
नृप औ नृप बालक आयेंगे।
मांडवी आदि के योग्य कुंवर,
स्वयमेव वहां मिल जायेंगे।'

'ये थाती हैं दूजे कुल की,
रख सकें न इनको पास सदा।
दस पांच दिवस की पाहुन ये,
करना होगा फिर इन्हें विदा।

भर गया कंठ विह्वल मन हो,
'है यही उचित' माता बोलीं।
'होने दो पहले सिय-विवाह,
फिर औरों की साजें डोली'।

पा कर रानी से अनुमोदन,
निज सचिव बुला नृप कहे बचन।
'वर वही जानकी का होगा,
जो पूर्ण करेगा मेरा प्रण।'

'देश देश को दूत भेज कर,
सिया स्वयंवर साज सजाओ।
साथ साथ मेरे प्रण की भी,
चर्चा चारों ओर चलाओ।'

सिया सखी सब मंगल गातीं,
छेड़ कुंवरि को, मन इठलातीं।
बहिनें भी अति हर्ष भरी थीं,
हंसती फिरती साथ संगाती।

विविध भांति होती तैयारी,
खिली पुष्प सी नगरी सारी।
चित्रित महल रंगे दरवाजे,
सजे धजे सब पुर नर-नारी।

राजमहल में भी होतीं नित,
बातें वही, हृदय सब प्रमुदित।
शुभ बेला ज्यों निकट आ रही,
सिय विवाह छाया सबके चित।

जनक लली सपनों में खोयी,
मन ही मन कल्पना संजोई।
बहिन मांडवी उर उमंग कुछ,
कुछ थी विरह-व्यथा मन गोई।

आई ज्योंही मधुर घड़ी वह,
बजे नगाड़े द्वारे रह रह।
देश देश के नृपति पधारे,
पाये वास सरस उपवन, गृह।

सुना जनक ने कौशिक आये,
संग कुंवर दो सुन्दर लाये।
पहुंचे तुरत साथ मंत्री गण,
पूज चरण, शुभ वास दिलाये।

देख राम छवि पुलकित लोचन,
सोच रहे विदेह मन ही मन।
सीता योग्य यही श्यामल वर,
रखना लाज शम्भु भव-मोचन।

फिर पूछा परिचय धीरज धर,
'प्रभो कौन यह बालक सुन्दर?'
विश्वामित्र हर्षयुत बोले,
'पहचानो, ये हैं अलभ्य वर।'

'अवधपुरी-जनमे दशरथ घर,
आये साथ मारने निश्चर।
मार सुबाहु, ताड़का पल में,
भगा दिया मारीचि बान धर।'

'समाचार जब पुर के पाये,
यज्ञ स्वयंवर में ले आये।
शम्भु धनुष को परख देख लें,
सोचा ये दशरथ के जाये।'

सुन मन जनक हुए अति हर्षित,
जगी आश आनन्द मगन चित।
मांग विदा लौटे अपने गृह,
यज्ञ प्रबन्ध कार्य करने हित।

जान राम की इच्छा मन में,
निरखा कौतूहल लक्ष्मण में।
आज्ञा दी कौशिक ने, 'जाओ,
विचरण करो नगर उपवन में।'

'उद्यान जनक का है सुन्दर,
मन्दिर गौरी का बना सुघर।
दर्शन कर, लेते आना तुम,
कुछ पुष्प चढ़ाने शिवजी पर।'

इधर मात बोलीं समझा कर,
'सखी सहित मन्दिर में जाकर।
सुता, करो पूजन गिरजा का,
सब विधि आरति थाल सजा कर।'

तत्पर तुरत साथ की टोली,
चली सिया, भगिनी संग होली।
पूछ रही चंचला मांडवी,
'मांगोगी क्या जीजी भोली ?'

'मेरा वर तो', बोली सीता,
'वही धनुष को जिसने जीता।
चलो मांग लें मां गौरी से,
तुम सबके ही जीवन मीता।'

सिया बात से तनिक लजा कर,
रही मांडवी नयन झुका कर।
ज्यों झंकार उठे वीणा से,
स्वर बहते हों कुछ सकुचा कर।

'जौजी यदि सम्भव हो पाता,
साथ तुम्हारे यह तन जाता।
हर्ष बीच नहिं कसक उभरती,
व्याकुल मन निवृति पा जाता।'

'भावी वियोग की बात सोच,
भर आता है यह हृदय पोच।
समझा लेती हूं चुपके से,
कुछ बता न पाती दु:ख-संकोच।'

सुन कर सीता हो गई विकल,
उर में सुख करुणा छलक गई।
कर से कर दबा मांडवी का,
ठिठकीं, दृग बूंदें झलक गईं।

इतने में मन्दिर दिखा निकट,
दर्शन पाकर उर भाव बढ़ा।
गिरिजा के चरण कमल छूकर,
उर अर्पण को चित्त चाव चढ़ा।

विधिवत करके पूजा, अर्चा,
जल पुष्प धूप, मानस वर्चा।
चरणों में शीश दिया निज धर,
फिर भाव सहित निज उर अर्चा।

क्या किसने मांगा क्या बूझा,
जो जिसको भाया जो सूझा।
जो कह न सकीं, संकोच रहा,
गौरी ने सब अन्तर बूझा।

पूजन कर बोली सिया लली,
'शोभा निहार लें तनिक अली।'
आगे पीछे कर सखियों को,
मांडवी हाथ गह आप चली।

विहंगों को कहीं निहार रहीं,
जल लहरी उमग उछाल रहीं।
आपस की हंसी ठिठोली संग,
उपवन की देख बहार रहीं।

मांडवी बैठ तरु के नीचे,
संग सिया, पुलक लोचन मींचे।
मन में भर कानन - पुष्प - छटा,
सौन्दर्य विन्दु से उर सींचे।

चौंकी सब, देखा मृग शावक,
मांडवी पालित सुघर सलोना।
दौड़ा आता आकुल सा हो,
सुधि बुधि भूले भोला छौना।

कारण क्या इस आकुलता का,
इस मोह भरी व्याकुलता का?
देखा नयन उठा जो सन्मुख,
गया ठगा मन सीता का।

मुख चन्द्र मधुर चितवन भोली,
मस्तक पर थी चन्दन - रोली।
रह गई देखती अपलक दृग,
मूरत उर धागे में पो ली।

थे राम उधर बातें करते,
लक्ष्मण के संग में थे फिरते।
पुष्पों के गुच्छे लिये हाथ,
देखा सन्मुख न पलक गिरते।

आंखें जैसे ही चार हुईं,
मन ही मन में मनुहार हुई।
उर्मिला लखन के उर में भी,
पल प्रीति भरी झंकार हुई।

सखियां मानों सुख सोई सी,
थीं स्वप्न जगत् में खोई सी।
वे मन्त्रमुग्ध, तन मन विसरा,
दर्शन करके सुधि खोई सी।

भ्रातायुत रघुवर सबको लख,
संकोच आन पर मन को रख।
हो गये ओट तरु पल्लव के,
थे नयन भ्रमित यौवन मधु चख।

सीता से कहा मांडवी ने,
'अब जगो कल्पना निद्रा से।
सुख सपनों में खो गईं कहां ?
जागो अब अपनी तन्द्रा से।'

कहती आली एक परम प्रिय,
'मध्य हमारे नहीं यहां सिय।
नयन अहेरी के सर से, हो—
आहत गया संग इनका हिय।'

'बिन परिचय जाने कुछ मन में,
भावों में, निज अन्तर्मन में।
कर दिया प्रतिष्ठित अनजाने,
जाने क्या ईश्वर के मन में ?'

सुन एक सयानी तब बोली,
सबके मन की गांठें खोलीं।
'दशरथ सुत राम और लक्ष्मण,
बिन जाने तुम जिनकी हो लीं।'

'मेरा यह भी सुन लो विचार,
राजा दशरथ के पुत्र चार।
श्रीराम लखन औ रिपुसूदन,
हैं भरत राम ही की उनहार।'

'जग जांय पुण्य, यदि सब भ्राता,
बन जांय जनक के जामाता।
हों सफल मनोरथ हम सबके,
हो जांय प्रसन्न कहीं धाता।'

सुन कर झलका हर अधर हास,
छाया सबके मन में हुलास।
युग युग के मीत मिले मानो,
अंतर की पूरी हुई आस।

पहुंचीं लौट सदन में जाकर,
जनक प्रिया बोलीं तब आ कर।
'हुआ विलम्ब बहुत तुम सबको,
गौरी का पूजन आईं कर?'

वात सुनाई सखियों ने फिर,
रही सुनयना मोद भरी थिर।
देखा मुड़, पाया सब के ही,
मुख पर लाज मधुर आई घिर।

बुला नृपति को पूछी गाथा,
कैसे आये ये रिषि साथा।
कथा जान कुछ हुआ भरोसा,
विधि को नमित किया माथा।

बस बात-चीत में रात हुई,
कुंवरी सब अपने कक्ष गईं।
मन मोह मढ़े, नव उत्सुकता,
शुचि नेह भावना जगी नई।

मूंदें नयन, कल्पना जागी,
सपनों में फिर सनी रहीं।
सुन्दर, मधुर, सलोनी छबियां,
उभर हृदय में बनी रहीं।

कुछ पूर्व - जन्म का नेह प्यार,
'हैं भरत राम ही की उनहार।'
मांडवी हृदय की धड़कन में,
कहता कोई आ बार - बार।

दो

हो गया प्रातः पुर शोर मचा,
आये सब, कोई नहीं बचा।
सब राज - भवन की ओर चले,
शुभ यज्ञ विधान जहां विरचा।

थे जगह - जगह शुभ मंच बने,
आकर बैठे नृप बने ठने।
निज उचित समाज बिराज रहे,
थे वीरों के समुदाय घने।

मिथिलापति का भी सभा मध्य,
रक्खा था सिंहासन सुन्दर।
थी निकट सुनयना के बैठीं,
कन्यायें अवसर योग्य संवर।

सन्मुख सुन्दर शुभ्रस्फटिक का,
आसन रक्खा दिव्य जड़ित।
बैठे राम लखन संग कौशिक,
श्यामल घन ज्यों साथ तड़ित।

बीच सभा, गर्वित निज गरुता,
अमित तेज मदमाती प्रभुता।
हर धनु परख रहा सब ही को,
देखें किसमें कितनी क्षमता।

कर साहस नृप उठे चाव से,
छुआ धनुष भी हाव-भाव से।
लेकिन थके परिश्रम कर सब,
हिला न तिल भर किसी दांव से।

दशमुख बानासुर फिरे निरख,
शंकर धनु टाले नहीं टले।
हारे कर युक्ति महीप सभी,
थे गये सभी के मान दले।

थे उधर जनक डरते मन में,
ले उठा न कोई ,धनु क्षण में।
जब तक राम उठें आज्ञा पा,
जीत न ले सीता को प्रण में।

प्रभु हाथों बानक बने सकल,
सीता संग राम रहें सकुशल।
अकुला कर राम ओर देखें,
फिर कौशिक को, कामना-प्रबल।

विश्वामित्र समझ दृगभाषा,
नृप की उलझन औ आशा को।
बोले, 'राम उठो अवसर अब,
पूजो सबकी अभिलाषा को।'

आज्ञा पा उठ कर खड़े हुए,
सौन्दर्य वीररस मढ़े हुए।
जिसने भी देखा उन्हें वहां,
थे राम सभी चित चढ़े हुए।

उठ चले राम, सीता ने देखा ,
नयन उठा शिव का धनु पेखा ।
स्मरण किया मन में गौरी का ,
झलकी मुख पर चिन्ता रेखा ।

सीता की उस अकुलाहट को ,
लक्ष्मण ने अन्तर में आंका ।
वह बोल उठे 'शिव धनु सम्हलो ,
रघुकुल का वीर उठा बांका ।'

मिथिलेश सहित सव मुस्काये ,
सिय नयन झुके कुछ शरमाए ।
जब धनुष निकट थे चले राम ,
सबने मिल हर गौरि मनाए ।

पास पहुंच धनु को यों देखा ,
मानो सिया विजय की रेखा ।
दृष्टि फिरी सब ओर सभा के ,
जनक मंच को भी फिर देखा ।

सिया प्राण तो टंगे हुए थे,
राम प्रेम-रस पगे हुए थे।
भाव मांडवी के उर के भी,
अवध रंग में रंगे हुए थे।

देखं सिया के व्याकुल मन को,
जनक नृपति की उर-उलझन को।
झटपट उठा लिया शिवधनु को,
टूक कर दिये, रुके न क्षण को।

सांस लौट आई सब ही की,
पूजी आस जनक के जी की।
पुरवासी सब मोद मुदित हो,
कहैं—'विधाता सुनी सभी की।'

'रचा अकेला सोच-स्वयंवर,
मिले सभी कन्याओं को वर।'
भ्रात सहित हर्षित विदेह अति,
राम लखन को निरख-निरख कर।

सखी संग सिय खड़ी हुई थी,
राग रंग में पगी हुई थी।
कर में थी सुन्दर जयमाला,
आंखें नीचे गड़ी हुई थीं।

कुछ सीय बढ़ीं, कुछ राम झुके,
कर उठे तनिक तो पलक रुके।
जयमाल चलीं पहनाने जब,
शोभा लख सबके नयन थके।

उस सभा-सरोवर में अनुपम,
थे दो सुन्दर मुख कमल खिले।
इक कनक रूप अति सुखदायी,
दूजा नीलम के रंग भले।

सब नयन भ्रमर से लुब्ध हुए,
मन भाव सभी अवरुद्ध हुए।
केवल रस पान लालसा भर,
उर-नेह भावना बद्ध हुए।

ज्यों ही धनु टूटा, मची धूम,
गीतों का स्वर नभ रहा चूम।
बज उठे सरस शुभ वाद्य सभी,
नर्तक गन नाचें झूम-झूम।

हो विश्वामित्र मुदित देखें,
सीतावर सुन्दरता लेखें।
उर उमग प्रीति रस धार बही,
मुख पर मुस्कानों की रेखें।

बोले विदेह से हर्ष भरे,
मृदु वाणी से रस धार झरे।
'प्रण पूर्ण कर दिया ईश्वर ने,
भावी आशा भी पूर्ण करे।'

'तैय्यारी अब करो रीति की,
और बने दृढ़ गांठ प्रीति की।
भेजो दूत अवधपुर सत्वर,
लिखवा कर पत्रिका नीति की।'

'जो आज्ञा,' कह नृप हुए खड़े,
मांडवी ओर सिय चरण बढ़े।
सखि बहिन साथ रनिवास चलीं,
दृग रहे राम के निकट अड़े।

संग में ले करके राम लखन,
आये कौशिक अपने निवास।
था जनक नगर में सुख छाया,
बजते बाजे, बढ़ता हुलास।

गुरु शतानन्द ने कर विचार,
लिख लग्न पत्रिका दी सुधार।
मंगल बेला का शुभ मुहूर्त,
दिन, मास, घड़ी, नक्षत्र वार।

लिखकर फिर कुंकुम छिड़क तनक
ऊपर से लाल कलावा ले।
रख तन्दुल हरद सुपारी को,
फिर जतन साथ में बांधा ले।

कहते विदेह से शतानन्द,
'लो सचिव हाथ भेजो सानन्द।
साथ पत्र भी, समाचार सत्र,
आयें जल्दी मन हो आनन्द।'

बुलवाये नृप ने सचिव तुरत,
जो स्वामी सेवा में अनुरत।
फिर मंगा लेखनी मसिगर्भा,
लिखने बैठे वर्णन विधिवत।

सिय कौतुक, शिव धनु की महिमा,
निज पन हर-धनु के विग्रह का।
लिख डाला अति विस्तार सहित,
वर्णन सब राम-अनुग्रह का।

फिर साथ विनय के लिखा, 'प्रभो,
कर दो कृतार्थ हमको आकर।
सुख पायें जनक-नगर वासी,
वर राम तुम्हें समधी पाकर।'

'प्रिय भरत लाल हों साथ, और
रिपुसूदन को निश्चय लाना,
सुन राम लखन से ही सुन्दर,
दर्शन को मन है ललचाना।'

'मिथिला नगरी अति पुलक भरी,
सबके दर्शन को है आतुर,
हम योग्य नहीं फिर भी स्वागत,
करने को आकुल है यह उर।'

भेजे मंत्री औ दूत तुरत,
देकर पाती और लग्न-पत्र,
भेजा विवाह का सन्देशा,
बांधव मित्रों को यत्र तत्र।

लख सिया मात ने शुभ अवसर,
यह कहा जनक को बुलवा कर,
'लिख पत्र और पत्रिका गई,
कर शोध विवाह लग्न सुन्दर।'

'पर था विचार मन में जैसा,
संयोग मिल गया है वैसा,
मांडवी भरत का जोड़ बने,
बदला क्या अब ? अंतर कैसा ?'

समझा कर बोले जनक, 'सुनो,
आने दो सबको, बात गुनो,
मत निर्णय में शीघ्रता करो,
जब सन्मुख आयें तभी चुनो।'

'मांडवी मुझे अति ही प्यारी,
सीता संग रहे नित्य न्यारी,
मुझको भी लगती बात भली,
ये साथ रहें बहिनें सारी।'

'कुशध्वज से तनिक पूछ तो लूं,
जल्दी में क्यों निश्चय कर लूं,
आयेंगे अवधराज जब घर,
तब बातें कर सब तय कर लूं।'

'लेंगे हम देख नयन से भी,
है सत्य बात या अन्तर भी,
हैं राम सदृश गुण रूप शील,
लूं देख भरत को स्वयं तभी।'

बता बात मन की रानी को,
जनक व्यस्त हो अगवानी को,
बोले सचिव बुला—'सब साजो,
मग गृह द्वारे, रजधानी को।'

कहां जरूरत थी आज्ञा की,
पुर शोभा वैसे सुन्दर थी,
सज़्जा अनुपम बाहर भीतर,
इन्द्रपुरी से बढ़कर थी।

जनक राज की सीमा से ही,
सब प्रबन्ध मिथिला तक के थे,
नदी तटों पर नौकायें थीं,
हय गज रथ पथ पर चलते थे।

श्रीरामचन्द्र के दर्शन को,
कौशिक निवास पर भीड़ लगी,
जो देखो दौड़ा आता था,
सीता वर से थी लगन लगी।

रनिवास पुलकता मोद भरा,
लग रहा भवन प्रिय दर्शित था।
नितप्रति नवीन थे साज वने,
उर भाव ब्याह् हित अर्पित था।

मांडवी सोचती थी मन में,
आवे बरात कब आंगन में,
'भरत राम की ही उनहार,'
वह बात घूमती थी मन में।

पाया कुछ सखियों से सुन,
जननी आग्रह औ पिता वचन,
हंस-हंस कर आली छेड़ रहीं,
'क्यों चुप हो नीचे किये नयन।'

'सिय की बरात आनी ही है,
संग भरत लाल—जाना ही है,
बस विदा तुम्हें भी कर देंगे,
नृप ने मन में ठाना ही है।'

'मत इठलाओ, मत मौन रहो,
जाना सीता संग तुम्हें अहो,
मन ही मन भाती बात सकल,
मुख से, मत छेड़ो हमें कहो।'

सुन सुखी मांडवी अंतर में,
थी दुविधा चिन्ता भी मन में,
'पितु की इच्छा जाने कैसी,
मां क्या कहती हैं उस क्षण में।'

'सब बहिनें साथ मगन होंगी,
आनन्द भरी निशिदिन होंगी,
है कहां अवध सा नगर और,
सौभाग्य सभी हम संग होंगी।'

था छलक रहा रस रात दिवस,
सबके मन हर्षित प्रेम विवश,
कर रहे प्रतीक्षा आगम की,
परिजन युत स्वयं विदेह अवश।

थे त्वरित वेग से दूत चले,
सब ओर मनोहर दृश्य भले,
देखा जब अवधपुरी वैभव,
पल में ही उनके चित्त छले।

आकाश चूमते भवन सभी,
पुर शोभा मानो सजी अभी,
मग वीथी बाग बगीचों में,
छाया बसन्त जाता न कभी।

जब द्वार नृपति के वे आये,
देखा उनको अति शोभा पाये,
थे सभा मध्य, ज्यों दिपे सूर्य,
हंस पूछा नृप ने 'क्या लाये?'

वर सचिव जनक के आये हैं,
शुभ समाचार कुछ लाये हैं,
जाना पहले ही दशरथ ने,
फिर सभा भवन आ पाये हैं।

थे इसलिये पुलकित होकर,
नृप पूछ रहे हुलसित होकर,
'हैं कुशल राम लक्ष्मण मेरे ?
है कहां पत्रिका ? दो लाकर।'

बतला सब बात स्वयंवर की,
कारण, परिणाम, चतुर वर की,
कौशिक अनुमति, विवाह लग्न,
मनुहार, विनय मिथिला वर की।

पहिले नृप हाथ धरी सादर,
पाती विदेह की प्रेम भरी,
तब लगन पत्रिका सन्मुख रख,
आदर के सहित जुहार करी।

आसन सुन्दर दे सचिवों को,
औ बिठा साथ के दूतों को,
फिर खोला पत्र लगे पढ़ने,
भूले पल भर सब भावों को।

सुना सभी को पढ़ी दुबारा,
गुरु चरणों की ओर निहारा,
कर प्रणाम बोले रघुकुल पति,
'प्रभु यह आशीर्वाद तुम्हारा।'

'लग्न पत्रिका खोल पढ़ें अब,
चलना है बरात लेकर कब,
राम लखन से मिलने पहुंचें,
जाकर जनकपुरी में हम सब।'

हर्षित मन के भाव सलोने,
लग्न पत्रिका पढ़ी गुरू ने,
नेग चार औ तिथि विवाह,
बतलाये विधिवत जब जब होने।

मिथिलापति को सन्देश दिये,
सचिवों ने भर उर मोद लिये,
'जल्दी ही पहुंचेगी बारात,'
कह सन्माने सब विदा किये,

जा कर रनवास बुलाई रानी,
सत्वर आईं सब, सुनी कहानी,
बार बार सुन कर सुख पाती,
हर्षित होतीं सब मन मानीं।

बाल सखा, मन में हरषाये,
भरत पास सब दौड़े आये,
पूछ रहे फिर फिर, 'बतला दो,
कुशल राम? कहां ब्याह रचायें?'

शुभ कथा भरत से सुनी सकल,
जुट पड़ा नवल रचना में दल,
कौन अधिक सुख साज सजे,
थी होड़, हृदय अभिलाष प्रबल।

शत्रुघ्न भरत अति प्रेम मगन,
उल्लास लास भर रहा गगन।
थे सखा समेत मोद फूले,
बस राम ब्याह की लगी लगन।

कैकई कौशिला भर उमंग,
थीं मुदित सुमित्रा, पुलक अंग,
शहनाई ढोल बीन बाजे,
कानों में छलका रहे रंग।

सब विधि बारात की तैयारी,
सजते वाहन अति छवि धारी,
स्वर मधुर गूंजते पुर भर में,
गा रहीं गीत सुन्दर नारी।

सज रही बारात मोद करते,
रिपुसूदन साथ भरत सजते,
छलक रहा परिहास हास,
थे स्वप्न नये उर में भरते,

कह रही एक, 'कितने आतुर,
जैसे वर यही, न रहते थिर,
दूसरी हंसे, 'कब ज्ञात तुम्हें,
जो हो संयोग ऐसा ही फिर।'

'पुत्रियां अनेक जनक घर हैं,
और कुंवर हमारे सुन्दर हैं,
क्या खाली हाथों लौटेंगे?
कन्यायें वहां, यहां वर हैं।'

हाथी घोड़े औ रथ विचित्र,
सज गये, साथ सब चले मित्र,
ढोलक मृदंग का घोष मधुर,
हैं द्वार द्वार पर सजे चित्र।

सजवा कर सुन्दर सा गयन्द,
गति जिसकी थी मनहरण छंद,
प्रमुदित हो बिठलाया गुरु को,
सब प्रकार मन भर आनन्द।

फिर श्वेत शुभ्र एरावत सा,
गज सबके अन्तर बीच बसा;
बैठे ले साथ कुंवर प्यारे,
बज रहे शंख झालर धौंसा।

कर नेगचार निकली बारात,
शुभ साज सजे, थे पुलक-गात,
दल भारी, धूल उड़ी नभ में,
मिट गया भेद, थी दिन कि रात!

चल दी बरात शुभ दान हुये,
सुर मुनि उर मोद महान हुये,
मच गई धूम, जिस ओर चले,
उनके गुण गौरव गान हुये।

अति सज्जित दोनों ओर पाथ,
शुभ दीप कलश और शंख साथ,
पुरवासी स्वागत हेतु खड़े,
ले दिव्य आरती थाल हाथ।

कहते, 'जब लौटो, कुछ रुकना,
हां बधू दरश, मांगे देना,
जो पत्र पुष्प हम ला पायें,
स्वीकार सहर्ष उन्हें करना।'

रिषि मुनि मिलकर आशीष कहैं,
दशरथ पुलकित हो विनत रहैं,
शत्रुघ्न-भरत हो मोद-मग्न,
सुख-सरिता में सउमंग बहैं।

तीन

थी जनक राज्य की सीमा पर ,
सत्कार-भाव की सरित बही ,
सुख सुविधायें सब भांति मिलीं ,
तन में न तनिक भी श्रांति रही ,

पहुंची बारात जब जनकपुरी ,
स्वागत को उमड़ पड़ी नगरी ,
पुर के बाहर ही पहुंच तुरत ,
भेंटे विदेह उर सुख-लहरी ।

दशरथ, वसिष्ठ को कर प्रनाम ,
चरणोदक ले, दे बहुत मान ,
बोले विदेह, 'हूं धन्य आज ,
पुरजन समेत निज पुण्य जान ,

फिर देख भरत का सुधि भूले ,
मिथिलापति सुख झूले झूले ,
थे सजल नयन, आनन्द भरे ,
दशरथ से बोले अति फूले ,

'है धन्य अवध का राज्य अरे ,
है धन्य जननि जो कोख धरे ,
हैं धन्य आप जो पिता पूज्य ,
है धन्य सुता मम, राम वरे ।'

'कर दिया कृतार्थ हमें प्रभु ने ,
मिथिला आकर, औ अपना कर ,
निज भाग्य सराहूं मैं कैसे ,
जनवास चलें अब सुख पाकर ।'

पहुंचाया करने को विराम ,
था वास जहां नयनाभिराम ,
जनवासा क्या था, नगरी थी ,
सब सुघर सजे थे सरस धाम ।

थे जनक संग जो बालक गन,
वे समझ न पाते थे उलझन,
दशरथ के संग कैसे आये?
थे राम लखन तो कौशिक संग।

देखे ज्यों ही शत्रुघ्न, भरत,
कौशिक समीप शंकित धाये,
जब देखे लक्ष्मण राम वहां,
जनवासे तुरत लौट आये।

'व्यर्थ चकित हो, हो आतुर',
कह रहे वृद्धजन समझाकर,
हैं अवध नृपति के चार पुत्र,
शत्रुघ्न, भरत, लक्ष्मण, रघुवर।'

हैं राम भरत दो श्याम वर्ण,
रिपुसूदन औ लक्ष्मण गोरे,
सुषमा-निधान, अति मृदुल गात,
दे दर्शन सब उर सुख घोरे।'

उधर बरात के संग जाकर,
अनुकूल वास सब दिलवा कर,
जब चले जनक, दशरथ बोले,
'हैं राम कहां, मिल लें जाकर।'

'उनके निवास पर चलकर हम,
पूजें कौशिक के पूज्य चरण,
जिनकी कृपा मिला यह दिन,
जाकर कर लें उनके दर्शन।'

ले साथ भरत रिपुसूदन को,
कर आगे गुरु, मिथिलापति को,
चल दिये अंग अति पुलक भरे,
दशरथ साधे मन की गति को।

लख राम उमंग बढ़ी आती,
लगता, लें दौड़ लगा छाती,
आदरयुत ऋषि को कर प्रणाम,
बोले, 'यह तो प्रभु की थाती।'

ऋषि हंसे 'उधार तुम्हारा था,
मांगा तुमसे सुत प्यारा था,
है वधू ब्याज उसका केवल,
इस बिना कहां निबटारा था।'

दृग छलक पड़े पुलकित था मन,
आ लखन राम ने किया नमन,
उर से लिपटाया, सुख पाया,
गुरु और पिता सब हुए मगन।

फिर भाई मिले परस्पर सब,
कब कौन झुका, आशीषा कब?
केवल दिखता, लिपटे उर से,
थे बहुत दिनों के बिछुड़े अब।

पाकर अवसर, शुभ समय जान,
गौरी गणपति का किया ध्यान,
बोले विदेह कर जोड़ विनत,
'दें आप कृपा कर मुझे दान।'

'कौशिक से ऋषि ज्ञानी उदार,
गुरुवर वसिष्ठ से नीति-सार,
दशरथ से दानी, शीलवान,
लें आज मुझे भव से उबार।'

'लख भरत, लखन, शत्रुघ्न रूप,
है पड़ा लोभ में मेरा मन,
मेरे भी चार सुता घर में,
अपना लें, हों सब मोद मगन।'

'मांडवी भरत के योग्य बने,
उर्मिला लखन के नेह सने,
रिपुसूदन को श्रुतिकीर्ति मिले,
प्रभु यदि ऐसा संयोग बने।'

दशरथ पुलकित, 'गुरु आज्ञा हो',
बोले वशिष्ठ, 'अति मोद अहो,
कौशिक आशीष मिला सब है,
अनुशासन लो आनन्द लहो।'

कौशिक झट बोले, 'बात भली ,
सुन्दर सुशील सब जनक लली ,
कुशध्वज की सुता मांडवी तो ,
सुरभित पाटल की नवल कली ।'

सब बात बनी मन जनक मुदित ,
छू बारम्बार चरण प्रमुदित ,
कह रहे, 'धन्य मैं हुआ आज ,
मिथिला का सचमुच भाग्य उदित ।

रघुवर मन में मुस्काते थे ,
लघु भ्राता कुछ सकुचाते थे ,
आये थे भाभी लेने हम ,
अब वर बनने को जाते थे ।

जनवासे पहुंच बात खोली ,
हंसती बरातियों की टोली ,
'है जनक राज ने भला छला ,
मिथिला में आज हंसी होली ।'

'जो सिया बधू को हैं लाये,
वह अब चारों में बंट जाये',
दशरथ हंस पड़े सुना जब यह,
'मिथिला में कृपण न कहलायें।'

थी जनक नगर में धूम मची,
हर्षित थे सब, विधि बात रची,
यह वर कन्याओं की जोड़ी,
कितनी सुन्दर, क्या खूब जंची।

महलों में पहुंचा समाचार,
रनिवास मुदित सब बार बार,
कुछ आशा थी पहले से ही,
हो पूर्ण, मिटा सन्देह-भार।

सब व्यस्त, कहां कब समय गया,
कब रात गई, कब प्रातः हुआ,
जाना न गया, कब दिन बीता,
था द्वारचार का समय हुआ।

जनवासे से नृप द्वारे तक,
आई बरात सज-धज' वाली,
मणिरत्न प्रकाशित थे घर-घर,
मिथिला में छाई दीवाली।

पुर में बरात का शोर हुआ,
शुभ वाद्य बजे, रव घोर हुआ।
श्यामल सुन्दर लख राम भरत,
हर्षित सबका मन मोर हुआ।

चारों वर कुंवर रसीले थे,
सुषमायुत थे, गर्वीले थे।
अपलक सब देख रहे थे छवि,
वे रूपवान, शरमीले थे।

नृप द्वारे भीड़ जुड़ा भारी,
बालाएं सजी धजी न्यारी।
थे सजे कलश, मणि दीप सहित;
आरती लिए थीं महतारी।

थी निकट सिया के सोह रही,
मन थी सब का ले मोल रही,
मांडवी लाज लिपटी बैठी,
मन के भावों को तोल रही।

उर धरे राम छबि मौन सिया,
सखि छेड़ जगायें प्रीति हिया।
मांडवी सोचती थी मन में,
'कैसे होंगे वे भरत पिया?'

सखि का कहना रघुबर निहार,
'हैं भरत राम ही की उनहार।'
आ जाता याद, चित्र बनते,
कल्पना जगे मन बार बार।

आते बारात को देख निकट,
सखियों ने इनको घेरा झट।
बोलीं, 'निहार लो जी भरकर,
अपने अपने दूलह झटपट।'

देखा नयन उठा क्षण भर,
फिर चित्त उधर ही दिया पठा।
सुधि भूली आस पास की सब,
चन्दा छूने ज्यों ज्वार उठा।

तन भर रह गया सखी संग में,
मन पहुंचा रंगा भरत रंग में।
हो मंत्रमुग्ध सी पुलक उठी,
छा गई सुछवि वह अंग अंग में।

घनश्याम बदन, मुसकान छटा,
सिर मौर, भंवर सी केश घटा।
श्यामल तरु पर पा आम्र बौर,
उर हरष भरी ज्यों चम्पलता।

शोभित थे सब वर अश्वों पर,
रम रहा टाप में घुंघरू स्वर।
आरती सजी, टीके होते,
ठुमकें तुरंग, मुसकाते वर।

हो रहे मुदित मन नेग चार,
न्योछावर करतीं सुघर नार,
लाईं वर वधुओं को आंगन,
मन सप्त पदी का समय धार।

मंडप सुन्दर थे चार बने,
मोता मुक्ता के साज बने,
कदली खम्भों पर टिके हुए,
सब ओर पुष्प के हार घने।

आसीन राम थे मंडप में,
थी वधू सिया उनके संग में,
हो रहा ब्याह फेरे पड़ते,
रंग गये सभी उत्सव रंग में।

'दूजे मंडप में साथ साथ,
दे भरत करों मांडवी हाथ,
कुशध्वज ने पूजे पग पावन,
कह वेद मंत्र कुल गोत्र साथ।'

उर्मिला और लक्ष्मण ब्याहे,
श्रुतकीर्ति शत्रुघन मन चाहे,
हो गईं पराई कुछ पल में,
सब सुता वरों की गह बाहें।

समय, लगा कर पंख उड़ा,
था सबके हृदय हुलास बढ़ा,
नित नये भाव, चित नये चाव,
मन मुदित चौगुना चाव चढ़ा।

कन्याओं का सौभाग्य देख,
था हर्ष जनक उर में अपार,
पर बात विदा की सोच सोच,
नयनों से झरती अश्रुधार।

मांडवी प्रेम रस में भूली,
कल्पना हिंडोले में झूली,
सम्मुख सपना साकार देख,
अन्तर में लता सदृश फूली।

सखियां हंस हंस थीं इठलातीं,
'बनी मांडवी, बहिन संगाती,
साथ न छोड़ा, अच्छा पकड़ा,
बना लिया देवर को साथी।'

'उस पर भी रखली होड़ यहां,
समता वर में भी मिली वहां,
श्यामल दोनों वर अति सुन्दर,
ऐसी जोड़ी फिर मिले कहां?'

'वर दुलहिन हैं सब भांति एक,
रंग रूप स्वभाव मिले से हैं,
गम्भीर सिया, वर धीर मिले,
तुम नटखट, भरत खिले से हैं।'

'जितनी भी तुम चंचल हो वे,
हंस कर सब ही कुछ सह लेंगे,
मुस्कान प्यार यह सहज उन्हें,
हैं सहनशील, सब झेलेंगे।'

परिहास हास में लगी होड़ ,
दिन बीते सब थीं प्रेम पगी ।
फिर समय विदा का आया जब ,
सकुचा उर, मन में पीर जगी ।

पति घर जाने का चाव, इधर ,
बिछुड़न दुख अश्रु बहाती थी ,
अन्तर में छिड़ा द्वन्द अद्भुत ,
मांडवी नयन भर लाती थी ।

थे जनक प्रेम पुलकित मन में ,
शुभ दिवस विदा का जब आया ।
मणि रत्न, वस्त्र भूषण कंचन ,
दे दिया सभी को मन भाया ।

फिर कहा बुलाकर सखियों को ,
सुख-साधन सब संग में धर दो ।
संकोच त्याग जो भी चाहें ,
नव रिद्धि सिद्धि पूरित कर दो ।

सीता से कहा मांडवी ने,
'ये देख हमें मन मारे हैं।
शुक और सारिका लो संग में,
पाला है, हमको प्यारे हैं।'

'ललचाता देख हमें जाते,
यह चपल मृदुल मृगछौना है।
क्यों इसे छोड़ कर जाती हो,
यह अपना सुघर खिलौना है।'

'इसमें स्मृति छिपी पिता की,
प्रीत संजोये जन जन की,
इसमें अन्तर का प्यार भरा,
वह बात समझता है मन की।'

जब सुने मात ने मधुर भाव,
मन ही मन में कुछ सोच हंसी,
सजवायें शुक, पिक, मृग छौना,
दृग बरसीं बूंदें, पीर बसी।

बज उठ शंख, स्वर गये जाग,
निकले जैसे वर विदा मांग,
थी हर्ष विरह, की धूम मची,
उल्लास लिये था करुण राग।

गा उठी सुहागिन विदा गान,
झरते आंसू, शुभ समय जान,
रोकें उनको फिर सिसक पड़ें,
जाती घर से है सुता जान।

कर जोड़े खड़े जनक राजा,
'हो क्षमा प्रभो जो चूक पड़े,
हैं आप उदार, महान, तपी,
इधर अमित त्रुटि, दोष बड़े।'

'रहता विदेह, पर स्नेह अतुल,
कन्यायें प्रान समान रहीं,
अब अपनी शरण इन्हें लेना,
देना मुझको बस दान यही।'

परितोष जनक को दे धीरज,
चल दिये अवधपति ले बरात,
आनन्द मगन, मन में हुलास,
हो रहा हर्ष से पुलक गात।

मग में कौतुक थे हुए नये,
गुरु नृप लख मन सुख पाते थे।
सुन्दर वर दुलहिन देख देख,
नव भाव उमड़ उर आते थे।

वधुएं शुचि वेश सजे सुन्दर,
मृगशावक सी कर दृग निपात,
निज निज अनुपम वर को निहार,
अति हर्ष भरीं, नव पुलक गात।

आ जाते ज्यों ही राम निकट,
सीता कुछ आकुल हो उठती,
मांडवी भरत को सन्मुख लख,
संकोच सहित नीचे तकती।

लक्ष्मण शत्रुघ्न मुदित मन में,
मानों सनेह की खींच डोर,
भाभी सीता मांडवी संग,
यों चलें बंधे ज्यों चीर छोर।

मांडवी पूछती लक्ष्मण से,
'मुझको दिखला दो वह कानन,
जिस जगह मिली गौतम पत्नी,
तरुणी बन गया कठिन पाहन।'

'किस भांति तात ने रक्षा की,
कौशिक मख की निश्चर दल से?
ताड़का न विचलित कर पाई,
निज शक्ति दम्भ से, छल बल से।'

सीता सुन कर कुछ मुस्काती,
उर्मिला मुदित गुनती मन में,
मांडवी बहिन का प्रश्न भला,
हम भी सुन लें क्या था वन में।

लक्ष्मण हंस कर बोले, 'भाभी ,
तुमने अच्छा पकड़ा मुझको ,
बस तात चरण का शौर्य कहूं ,
मेरी न कथा सुनना तुमको।'

विस्तार सहित फिर बतलाई ,
कौशिक की सारी मनो व्यथा ,
रघुबीर शौर्य, ताड़का मरण ,
रिषि नारी की भी कही कथा।

इस ओर राम ने कौशिक से ,
पूछा सब की इच्छा पाकर ,
'हे नाथ! भगीरथ गंगा की ,
सब कथा बतायें समझा कर।'

हो मन प्रसन्न कौशिक मुनि ने ,
गंगावतरण की कही कथा ,
बन गई जान्हवी शैल सुता ,
हो गई त्रिपथगा गंग पथा।

दो तीन दिवस बस इसी तरह ,
कहते सुनते इतिहास मगन ,
आ गये अवधपुर के समीप ,
आगे पहुंचाये दूत स्वजन ।

चार

आ रही बारात सुना ज्यों ही,
सज गये तुरत ही हाट बाट,
पहले ही सुन्दर सजा नगर,
अब तो दूने हो गये ठाठ।

कदली खम्भों से सजी डगर,
हर द्वार अल्पना पूरी है,
भूमि सुता के स्वागत में,
सज गई धरा छवि रूरी है।

भवन शिखर पर फहर रहीं,
ऊंचीं नभ चढ़ी पताकायें,
मानो है आंचल लहरातीं,
नभ में बैठी सुर बालायें।

थी रंग बिरंगी ध्वजा सजी,
शुभ सुन्दर बन्दन वार बंधे,
अनुपम सज्जा शोभा अतिशय,
थे पुष्प हार सब हाथ सधे।

थी छटा मनोहर रंगों की,
पुर की वह निरुपम शोभा,
ज्यों भूपर इन्द्र धनुष आया,
अवधपुरी के वैभव लोभा।

अगर धूप चन्दन बाती की,
छा रही सुगन्ध अधिक गहरी,
भर गई गगन में नव घन सी,
बरसाने को सुख जल लहरी।

वातायन से झुक झांक रहीं,
विधु मुखीं दूर बरात कितनी,
मानों घन उर से झांक रहे,
चन्दा अनगिन, छवि सरस बनी।

आभूषण जगमग करते हैं,
मानो हंसती फिरती बिजली,
अवधपुरी पर आज बरसने,
छाये सुख घन, पुरवाई चली।

उस राज महल की शोभा तो,
बरनें कैसे थी अकथ बनी।
सुन्दरता सभी सिमट आई,
छा गई भवन में घनी घनी।

पुरनारी मंगल साज सजा,
नृप द्वारे दौड़ी आती हैं,
ले भरे कलश नव सुमन थाल,
दीपक के साथ सजाती हैं।

मातायें साज सगुन शुभ सब,
करतीं परिछन की तैयारी,
कौशल्या संग कैकेई सुमित्रा,
दे रहीं दान मन सुख भारी।

ज्यों ही बरात आई पुर में,
नभ गूंज उठा जयकारों से,
ध्वनित शंख झालर घंटे,
रस बहा बीन के तारों से।

द्वार द्वार शुभ दीप जले,
जल भरे कलश रक्खे मग में,
अबीर इत्र की धूम मची,
थे सरस गान होते संग में।

सुरभित जल से सींच सींच,
नव पुष्प बिछाये मग ऊपर,
पुरजन बरसा रोली चावल,
देते आशीष उमंग नेह भर।

लतिका सी कोमल कामिनियां,
शुभ खील बताशे बरसातीं।
फूली हों जैसे चम्पलता, मग
पुष्प बिछा मन सुख पातीं।

राजद्वार पहुंची बरात जब ,
सारी नगरी ही उमड़ पड़ी ,
रम रहा नेह हर कन कन में ,
हर उर में सुख सरिता उमड़ी ।

जब चारों वेद ऋचाओं संग ,
आ पहुंचे दशरथ के आंगन ,
अवध नगर के वासी सब ,
बन गये विदेह, आनन्द मगन ।

गा रहीं गान सुन्दर नारी ,
सासें वर वधुएं देख थकीं ।
चारों जोड़ी अति सुखदायक ,
आंखें पीकर सौन्दर्य छकीं ।

आरती और न्योछावर कर ,
बारी बारी मुख देख रहीं ,
शुचि सुषमा सुन्दर वधुओं की ,
दृग देख थके, नहिं जाय कही ।

देकर कनक भवन सीता कों,
केकई मुख देखे भाव भरी,
तब तक आ गई मांडवी निकट,
क्या दूं इसको, मन सोच परी।

जब घूंघट उठा मांडवी का,
देखा, थिर रहे नयन मां के,
न्योछावर कर, भरत हाथ ले,
पकड़ाया कर में मांडवि के।

बोली, 'यह अनमोल रत्न,
रखना सम्भाल, है दिया तुम्हें,
सुख कभी कभी हम भी पा लें,
बस इतना देना अधिकार हमें।'

सुन वधू मांडवी गई लजा,
उर में छा हर्ष हिलोर गई,
सखियां मुस्कातीं वर निहार,
'अब मिली स्वामिनी तुम्हें नई।'

पूरी कर सारी कुल विधियां,
उर लगा, ले गईं फिर अन्दर,
बरस रही सुख राशि भवन में,
झनक रहे रुन झुन के स्वर।

रीझें नित प्रति सब ही सुन,
स्वरचित गान मांडवी वधु के।
करते न्यौछावर मन औ तन,
भोले पन पर इन बहनों के।

देवर द्वय तो सदा रहें
तत्पर, कब कैसा काम मिले।
छेड़ कहे मांडवी, 'बहाना
बधू मिलन का,' हास्य खिले।

नित्य उलझते भरत प्रिया से,
सीता से कुछ सकुचाते थे।
लखन और रिपुसूदन भाभी,
छाया में ही सुख पाते थे।

भरत हास विकसित सरोज,
तितली सम मांडवि छवि चंचल,
नृत्य करे नित ओर पास, ज्यों
चन्द्र किरण नर्तित प्रतिपल।

जब हंसती लगता फूल झरे,
बोले, स्वर राग छटा बिखरे।
चलती तो नृत्य करे धरती,
जहां बैठे हास उल्लास भरे।

चंचल चरणों के नूपुर का,
थिरक भरा स्वर थिर न रहे।
वाणी नव गान अनेक गढ़े,
स्वर निर्झर से अविराम बहे।

दोनों हृदय दिव्य सुख पाते,
कहती प्रिय से मुदित प्रिया।
'तुम सा स्वामी, मां सी सासें,
है पुण्य बड़ा उस जनम किया।'

'मिला साथ सीता जीजी का,
अवधपुरी का वास मिला।
जेठ मिले हैं पूज्य राम औ,
देवर द्वय का हास मिला।'

'अति प्यार पिता दशरथ करते,
लाड़ अधिक मन में सुख घोले।
बात तुम्हारी कहूं नाथ क्या,
मिले मुझे शिव शंकर भोले।'

बोले भरत, 'प्रिया भूलीं तुम,
वरबस बना आज हूं सीधा।
गान स्वरों से होकर मोहित,
बना स्वयं हूं मैं सा-नी-धा।'

'वन हिरनी सी चंचल, तुम में
मृगछौने में तनिक न अन्तर।
मैं मृग बना चला आता हूं,
दौड़ा राग स्वरों में बंध कर।'

'खूब कहा प्रिय, बन हिरनी को ,
तुम सा जो व्याधा मिल जाये ।
आखेट भुला, दृग चितवन से हो
मोहित, स्वयं हिरन बन जाये ।'

'तो चंचलता छूटे, छूटे वन-
हिरनी का बन बन फिरना ।
हो मुग्ध बंधे वह नेह डोर ,
हों साथ सजन वन के हिरना ।'

'अच्छी याद दिलाई वन की ,
कह दो तुम कहां गये कल थे ?
इसी भांति क्या बने अहेरी ,
भटक रहे तुम वन वन थे ?'

'रही प्रतीक्षा में मैं व्याकुल ,
सांझ पहर ले नव उपहार ।
बड़े चाव से गूंथे थे कुछ ,
बकुल पुष्प ले स्वर्ण तार ।'

'वहुत देर में आये थे तुम,
पा निकट तुम्हें मैं गई भूल,
बिसरी माला प्रिय, भुजा हार
पहिना उर पर बस गई झूल।'

'वार बार मत करना ऐसा,
नहीं दण्ड फिर सहना होगा।
वंध कर मेरे भुज वंधन में,
अब न करूंगा, कहना होगा।'

'तुम्हें सभी अधिकार प्रिये, है
बंधन अति प्रिय, मुक्ति कठिन।
पर दण्ड भला मिलता कब है,
अपराध सिद्ध हो पाये विन।'

'रही सांझ की बात, बैठ कर,
भ्रात निकट मन उलझ गया।
अद्भुत है आकर्षण उनका,
लख रहीं बाट तुम बिसर गया।'

'उनके समीप से हिलें न पल ,
करते रहें सदा बस पान ,
उनके वचनामृत, अरु वे भी ,
कहते कथा नई नित आन ।'

'इस त्रुटि को अब क्षमा करो ,
पर होगी प्रिये बार ही बार ।
कुछ न कहूंगा, सभी सहूंगा ,
हूं अपराधी, अब लो निहार ।'

भरत प्रिया सुन मुस्काई 'क्या ,
नित्य यही व्यवहार चले ?
रोज करोगे क्या खट पट अब ?
स्वामी तुम मुझको मिले भले ।'

'निश्चित रहो नहीं झगड़ूंगी ,
इस कारण तकरार न होगी ।
तुम मेरे, मुझे बहुत इतना ही ,
भ्रात भाव से रार न होगी ।'

'बहिन सिया औ पूज्य तात का ,
वरदहस्त हो सिर पर छाया।
और तुम्हारा प्यार मिले, बस
सब कुछ इस जीवन में पाया।'

हास खनक, कहिं मधुर गान,
क्रीड़ा नव, नित अभिनव विलास।
सुख पाते रस छलकाते यों,
बीते कितने ही दिवस मास।

लगा पंख उड़ रहा समय ,
कब दिन बीता, कब हुई रात ,
तिथि बदली, कब रितु बदली ,
कब गये वर्ष, होता न ज्ञात।

इसी बीच कैकय नरेश का ,
आया अनुचर लेकर पाती।
'पड़ता है जब संकट निज पर ,
याद तभी वीरों की आती।'

'हुआ आक्रमण का भय है,
सीमा पर है उत्पात यहां।
शत्रुघ्न भरत को भेज तुरत,
कर दें सहाय, सब कुशल वहां।'



'आ सकें स्वयं तो अति उत्तम,
यों बाहु बली हैं इनके भी।
अवधनाथ का यश भारी,
हैं शौर्य जानते देश सभी।'

बुला भरत को बोले दशरथ,
'मेरा जाना सम्भाव्य नहीं,
तुम और शत्रुघन दोनों मिल,
रह आओ कुछ दिवस वहीं।'

'जननी से भी जाकर पूछो,
उचित कहें तो फिर आकर,
सैन्य साथ ले शीघ्र करो,
प्रस्थान सकल सज्जा सज कर।'

कैकई सदन जा माता को,
कर प्रणाम फिर पत्र दिया।
पढ़ कर बोलीं यों भरत मात,
'अवसर यह विधि ने भला दिया।'

'दस पांच दिवस घर मामा के,
रह आओ, देश बड़ा सुन्दर।
जाकर सबसे कहना मेरा,
वन्दन सस्नेह और सादर।'

'इच्छा है, किन्तु कहां सम्भव,
पितु दरश, जा रहे नाथ नहीं।
उन बिना स्वर्ग भी त्याज्य मुझे,
जहां पिता तुम्हारे, वास वहीं।'

'है अभी तनक सी वधू सरल,
मृदु बातों से मन भरती है।
मांडवी कंठ हार मेरा प्रिय,
मधुर तान मन हरती है।'

'जाने दं उसको नहीं, रखूं,
कर दुलार औ प्यार यहीं।
तुम जल्दी आना लौट, न खो
जाना लख सुन्दर भूमि वहीं।'

शत्रूघन को सब समझा कर,
यात्रा की सारी कथा बता।
भरत गये निज भवन, मांगने
विदा युद्ध की बात जता।

सुन बात विदा की, कम्पित उर,
दृग सजल हुए दुविधा मन में।
'कैसे कर सकती विदा कहो,
जब बसे नाथ अंतर मन में।'

'थोड़े दिन का ही यह वियोग,
लगता जैसे हो युग युग का,
अनजानी शंका सी होती,
उर में आभास नहीं शुभ का।'

'उर भर आता बार बार,
उठते बरबस अप्रिय विचार।
नहीं मानता समझाये मन,
दुश्चिन्ता उर पर हुई भार।'

'बात नहीं कुछ, फिर क्यों आकुल?'
हंस कर भरत हृदय ला बोले।
'विरह मिलन मिल बनता जीवन,
दुख बिना कौन सुख सीमा तोले।'

'वृथा प्रिये यह शंका, हंस दो,
मत बिखराओ यह अश्रु लड़ी।
दस पांच दिवस में फिरूं तुरत,
मन रहे यहीं, प्रिय अवध बड़ी।'

विविध भांति सम्बोधन दे,
दे बोध प्रिया को चले भरत।
जा पहुंचे सीताराम सदन,
भ्रातृ भक्त, पद रज अनुरत।

आ गये इधर रिपुसूदन भी,
भरत चरन अनुराग सदा।
लेकर आये जननी अनुमति,
और प्रिया से मांग विदा।

हैं भरत लाल कुछ उन्मन से,
अति भाव गम्भीर भरे मन हैं।
राम वियोग, प्रिया बिछुड़न,
यात्रा की भी इच्छा मन है।

मांडवी प्रिया की आकुलता,
जगा रही दुविधा मन में।
अग्रज ने पूछा देख मौन 'हो
भरत आज किस उलझन में ?'

'खिन्न हंसी, औ मुख उदास,
व्याकुल से क्यों है गात आज ?'
हंस दी सीता, 'क्या हुई रार,
जो तज आये रनवास आज '

सुन कर भाभी की हंसी लगा,
उर पड़े मधुर छींटे जल के।
आकुलता कुछ थमी हृदय,
बोले प्रिय भरत धीर घर के।

'आया सन्देश है मातुल का,
पितु इच्छा, दी अनुमति मां ने।
यात्रा का सजता साज सभी,
क्यों प्राण हिचकते ना जाने।'

'विलग हुए थे पहले भी, जब
कौशिक के संग थे आप गये।
हुई न थी तब इतनी उलझन,
खलता वियोग यह, ताप हिये।'

बोले रघुवर 'प्रिय भरत कहो,
जा सकते कैसे सभी वहां।
मैं साथ चलूं, सुख मुझको भी,
पर कौन रहेगा भला यहां?'

'रह सकें अकेले पिता नहीं,
फिर कहां अधिक यह दूरी है ?
मन पास तुम्हारे रहे सदा,
उर नेह भावना रूरी है।'

सुन कर कुछ हुआ बोध मन को,
फिर भ्रमण लालसा चित्त चढ़ी।
बैठे रथ में प्रस्थान हेतु
शत्रुघ्न साथ, उर प्रीति बढ़ी।



पांच

भरत गये ननसाल, यहां नृप ,
एक दिवस केकयी से बोले ,
'श्वेत हुए हैं केश जान लो ,
वृद्धापन झांका पट खोले ।'

'उचित यही है भजन करें, उस
भव का भी कुछ सुख हम लें ।
राज्य भार सब सौंप सुतों को ,
वानप्रस्थ आश्रम अब लें ।'

केकयी बोली 'क्या सोच रहे ,
जब राम यहां, चिन्ता कैसी ?
सुधवा कर शुभ काल तुरत ,
अभिषेक करो, दुविधा कैसी ?'

'देख राम का राज तिलक,
सब अन्तर में सुख पायेंगे,
बहिन सुमित्रा कौशल्या के,
मन के सपने पल जायेंगे।'

'किन्तु अभी हैं भरत नहीं',
रानी कहतीं, 'अब ठहरो मत,
समाचार पाकर आयेंगे,
क्यों न भेज दो दूत तुरत।'

प्रातः उठ शुभ दिन सुधवाया,
अजुध्या नगरी में शोर हुआ।
सजे द्वार गृह वीथी सब,
थी पुरी मगन, मन मोद हुआ।

मांडवी महल नव दीप जले,
आतिश बाजी औ फूल घले,
मंगल गानों की सरस लहर,
रस बरसाती दिन रात चले।

विरह तीर की चकवी सी,
भरत प्रिया, प्रिय बिना दुखित,
हंसती भी थी, गाती भी थी,
उर व्याकुल था नहिं निकट भरत।

सुन उत्सव की बात हृदय की,
वेदना घटी, उर कमल खिला।
विरह सिंधु डूबी जाती थी,
राम तिलक आधार मिला।

'युवराज राम होंगे, प्यारी सी
बहिन सिया युवरानी होंगी,
बिखर रहीं खुशियां आंगन में,
हर पल घड़ी सुहानी होंगी।'

'अति सत्वर गति, भागे भागे,
आयेंगे नाथ खबर सुन कर।
पिया दरश प्यासी अंखियां ये,
होंगी तृप्त उन्हें लख कर।'

फिर कुछ शंका सी होती,
आशा छिपती चिन्ता घन में,
कभी आस ओ कभी निराशा,
बदले भाव हृदय का छन में।

'कैसे आ पायेंगे प्रियतम?
समाचार मिल पाये जब तक,
और करें प्रस्थान वहां से,
होगा यह उत्सव समाप्त सब।'

तभी तुरत ही आशा कहती,
'जिस विधि भी हो आ जायेंगे।
राम तिलक निज नयन निरख,
मन में अत्याधिक सुख पायेंगे।'

राज भवन पुर भवन सजे सब,
इन्द्रपुरी भी लज्जित हारी।
देश देश के दूत जुड़े ले,
अनुपम भेंट वस्तुएं सारी।

सज्जा केकई के महलों की,
थी सुन्दर सब का मन लोभा।
लेकिन यह सब लगा न अच्छा,
वृद्ध मन्थरा का मन छोभा।

दासी प्रिय पीहर की थी,
वह सदा केकई के मन भाई।
अति विश्वासी जान, सभी से
अधिक मान दी सदा बड़ाई।

नहिं वह क्रूर कुचाली थी,
बस वृद्धा-पन से हारी थी,
झुकी कमर कूबड़ बन कर,
तन मन से वैसे प्यारी थी।

चन्द खिलौना दिखा दिखा,
था कैकेई को गोद खिलाया।
माता मही समान सदा ही,
स्नेह भरत ने उससे पाया।

धारे भरत हेतु निज जीवन,
अपना सर्वस उन पर वारे,
उर अंतर में सरल सलोनी,
भरत छबी नित रहे संवारे।

रघुबर भी प्रिय थे उसको,
पर सदा रहा अन्तर मन से,
जदपि सरल सुख धाम राम,
हैं भरत लाल प्यारे सुत से।

केकई हर्षित राम सिया को,
लगा हृदय से नित मन मानी,
किन्तु मंथरा के उर को तो,
सर्वस भरत मांडवी रानी।

चहल पहल आनन्द धूम सब,
भरत बिना सुन उत्सव घर का,
नख शिख से जल उठी, लखा जब,
आयोजन यह राम तिलक का।

बिखरा बाल नयन भर आंसू,
केकई निकट पहुंची जा कर,
अशुभ वेश लख चकित हुई,
बोली उर में अति अकुला कर।

'कुशल पितृ कुल में तो सब हैं,
सिया राम औ 'नृपति कुशल ?
सुधि पाई क्या भरत लाल की,
अश्रु नयन क्यों हृदय विकल ?'

'कुशल सभी हैं सिवा तुम्हारे,
सब कुछ करतीं बिना विचारे,
खूब तिलक का साज सजाया,
रंगे विविध विधि भवन दुवारे।'

'समझा समझा हार गई मैं,
भला बुरा तुम कब जानोगी,
बैरी कौन, कौन अपना है,
नहिं यह अन्तर पहचानोगी।'

'यों तो दशरथ कहते हैं नित,
पुत्र सभी मुझको प्रिय लगते,
फिर भी मन में पक्षपात रख,
अधिक स्नेह रघुवर से करते।'

'तुम भी उसी राह पर चलतीं,
सिया राम को सगा समझ कर,
अपने ही सुत को भूली हो,
वह परदेश, यहां उत्सव घर।'

हंस पड़ी केकई, 'अरी मंथरा,
बात व्यर्थ क्यों भला बढ़ाये।
राम हेतु सब सुख न्यौछावर,
बात तिलक की मन अति भाये।'

'प्यारे मुझे प्राण से ज्यादा,
राम भरत सुत दोनों मेरे।
कोई बैठे सिंहासन पर,
क्यों विषाद है तुमको घेरे।'

शत्रुघ्न भरत होंगे मग में,
आ पहुंचेंगे शीघ्र समय पर,
चला गया है दूत लिवाने,
तू भी होगी सुखी निरख कर।'

'भोली हो तुम,' कहे मंथरा,
'और सदा मतिहीन रहोगी,
सवत और बहुओं के ताने,
लिखे भाग्य में सदा सहोगी।'

'अरे तजो भी भोलापन यह,
दिखलाओ मत भला लड़कपन।
पछता कर बस रह जाओगी,
होगा न सौत का दर्प सहन।'

'नृपति और सुख शैया प्यारे,
जीती हो तुम उसी सहारे,
पुत्र तुम्हारा दूर देश में,
तुमने उत्सव साज संवारे।'

'संकोची तुम, कह न सकीं पर,
राम मात क्यों चुप है, बोलो ?
भरत बिना कैसा यह उत्सव,
उनकी ममता को तो तोलो।'

'जब भेद अभी मन में रक्खे,
आगे के फल किसने चक्खे,
होगा यही बनी निर्वासित,
भटकोगी दर दर, खा धक्के।'

'छोह भरत पर नहीं तुम्हें भी,
तभी सुखी ननिहाल भेज कर,
ऐसा ही हाल रहा यदि तो,
कैसे रख पाओ सुख सहेज कर ?'

'आगे की भी तो सोचो कुछ,
बेटी, यों कब तक सोई रहोगी,
अस्थिर यौवन अस्थिर सुख सब,
रूपवती नहीं सदा रहोगी।'

'तब वांधोगी नृप को कैसे ?
वे अभी बंधे हैं बरजोरी में,
जो चाहो सब मनवा सकती हो,
बात जायेगी फिर होरी में।'

पहले तो सुन अकुलाई वह,
क्रोध चढ़ा उर बात न भाई।
जीत सौत की, हार समझ निज,
चौंकी, फिर मन में घबराई।

बोली, 'नहिं हो सकता ऐसा,
नहीं शीश झुक सकता है यह,
कैसे अब बिगड़ी बात बने,
करना क्या है समझाओ कह।'

इतना कह व्याकुल हुई दीन,
संघर्ष मचा मन, मौन हुई,
उलट पलट सब गये भाव,
विधना के मन की हौन हुई।

देखा लग गया निशाना है,
है विवश केकई मन अनुमाना,
लगा हृदय से धीरज देकर,
विविध भांति माना सन्माना।

'मुझको नहीं तुम्हारी चिन्ता,
भरत वधू का भी हक छिनता,
जो अपना है दे सकती हो,
त्यागो मत, सुत को जो मिलता।'

'भरत लाल युवराज, और प्रिय
मांडवी बहू युवरानी हो,
निज नयन देख लूं भरत तिलक,
उर की मेरे मन मानी हो।'

'छोड़ो तुम मन की चिन्ता',
कह रही मंथरा रानी को,
'नहीं अभी बिगड़ा है कुछ,
धर धीर सुनो मम बानी को।'

'याद मुझे है भली भांति जब,
हो रहा विवाह तुम्हारा था,
पुत्र तुम्हारा राज करेगा,
वचन नृपति ने हारा था।'

'भूल गये नृप, तुम भी भूलीं,
ऐसी सुख सपनों में झूलीं,
याद दिला अब वही नृपति को,
सौतन सुख पर डालो धूली।'

'ये सब ममता माया त्यागो,
अब तो मोह निशा से जागो,
युद्ध बीच पाये थे नृप से,
साथ-साथ वे वर भी मांगो।'

'दो वरदान कहे थे देना,
आज मांग लो छोड़ न देना।
प्रथम भरत को राज्य, दूसरा
राम जांय वन, कह कर लेना।'

रानी झिझकी सुन कर यह,
वन राम जांय नहिं ठीक कभी,
ऊंच नीच सब समझाया,
पर बात न उतरी गले अभी।

सोच रही केकई निज मन में,
'खोट अवश्य नृपति अन्तर में,
कैसे लेकिन यह बात बनेगी,
बिना राम को भेजे वन में।'

'नृप जीवित हैं उन्हें देख कर,
मेरे भी प्रिय, जीवन जी के,
उन बिन अवध लगेगी सूनी,
राम लाड़ले, प्राण सभी के।'

'फिर, जब वन को राम चलेंगे,
लखन सिया घर रह पायेंगे?
बहिनों में भी है प्यार अधिक,
मांडवी प्राण क्या सह पायेंगे?'

उधर मोह माया रघुवर की ,
इधर ध्यान भरत के हित का ,
समझ न आये निज हित अनहित ,
विकल हाल था उसके चित का ।

केकइ उर में थी हल चल अति ,
इधर तिलक की कर तैयारी ,
निशि समय भवन आये दशरथ ,
मन मोद मगन हर्षित भारी ।

पाया रानी को दुखित खिन्न ,
मुख चिन्ता रेखा, केश छिन्न ,
कुछ विकल, साथ ही कोप भरी ,
उठ रहे भाव मन भिन्न भिन्न ।

चौंके देखा यह रंग ढंग ,
'प्रेयसि कैसा यह भृकुटि भंग ?
किसकी चिन्ता, क्यों पीड़ा उर ,
कारण क्या, विकल तुम्हारे अंग ?'

'राज तिलक रघुवर का कल,
है समय सभी दुःख तजने का,
अब उठ कर साज सजो पूरे,
अवसर शुभ सज्जा सजने का।'

बोल सकी दो अक्षर बस,
आकुल इतना ही पूछ सकी,
'भेजा भरत हेतु क्या अनुचर?'
मन की आशा दृग में झलकी।

'प्रिये समय था कहो कहां?
अति निकट बन गया मुहूर्त यहां।
किस विधि जाता दूत भला,
है दूर देश, प्रिय भरत जहां।'

नहिं गया दूत सुन रोष बढ़ा,
बिसरी दुविधा, चित चंग चढ़ा,
जो कुछ था कहा मंथरा ने,
बरबस आ कर सब हृदय अड़ा।

नागिन सम बोली बल खाकर,
'छल रहे मुझे भोला पाकर,
आंखों का कांटा भरत तुम्हें,
भेजा बाहर जो बहला कर।'

'भला हुआ जो चेत गई मैं,
समझ गई छल अवसर रहते,
राम तिलक की धूम धाम यह,
जीत सौत की, प्राण न सहते।'

'भूल गये परिणय बेला में,
दिया हुआ वह वचन आज?
'राज पायेगा पुत्र इसी का',
भरत बिना यह तिलक साज?'

'अगर सत्य था वचन तुम्हारा,
मेरे सुत को युवराज बना दो,
सही बहुत, अब नहीं सहूंगी,
भरत लाल को राज सजा दो।'

'बस इतनी सी बात प्रिये, मैं
भूला सचमुच, पर अमर्ष क्यों ?
राम तिलक की सज्जा में तो,
किया वही जो कहा, कर्ष क्यों ?'

'अगर तुम्हारी यह इच्छा है,
भरत तिलक ही फिर हो जाये।
जदपि नहीं यह उचित, ज्येष्ठ ही
रघुकुल में सिंहासन पाये।'

उचित नहीं सुन दंश लगा उर,
दामिनि सी वह दमक उठी,
'इतने से ही नहिं छुटकारा',
घन की गराज सी गरज उठी।

'देवासुर संग्राम समय के,
दिये कहां वर तुमने कह दो ?
रघुकुल रीति यही है क्या,
देकर वर, 'मैं भूला' कह दो ?'

नृपति विकल, 'क्या हुआ तुम्हें,
क्यों नहीं स्मरण कराया था ?
इच्छित वर नहिं मांगे तब क्यों,
कब मना किया, बहलाया था ?'

'अब भी लो मांग प्रिये मुझसे,
मन में जो तुमने धारा हो,
क्यों व्यंग बान से भेद रहीं,
उसको जो तुमसे हारा हो।'

'मांगो मांगो कहते तो हो,
सुन कर नाहीं मत कर देंना।
प्रथम भरत को राज तिलक,
दूजा रघुवर को वन देंना।'

'बन तपसी चौदह वर्षों तक,
घूमें वन वन, मम इच्छा यह,
प्रण पूर्ण करो, दो वर दोनों,
जो दिये समर में मुख से कह।'

दिग्मूढ़ बने नृप देख रहे,
है ठीक सुना या भ्रम है कुछ।
प्रेयसि मुख ओर निहार रहे,
परिहास हास ? या सच सब कुछ ?

जाना यह सच है नितान्त,
केकई उर की है यही चाह,
चेतना हीन हो भूमि गिरे,
अन्तर से उभरी विकल आह।

फिर याद किया कोमल स्वभाव,
केकई राम का स्नेह भाव,
कहते, 'क्या दोष राम का है ?
पाला है तुमने बड़े चाव।'

'भरत तिलक की बात ठीक, पर
हो सकता क्या कुछ हेर फेर ?
यों न राम को भेजो कानन,
दुःख पाओगी तुम स्वयं ढेर।'

'तज मान उठो अब प्राण प्रिये ,
मन चाहे यह लो, वरदान दिये ,
दिया भरत को राज आज ,
मुसका दो होकर मुदित हिये ।'

'और राम भी बात मान कर ,
दस चार दिवस बस लें कानन ,
फिर लौटें आकर लगें हृदय ,
छा जाये हर्ष सभी के मन ।'

लेकिन माने क्यों कर रानी ,
चित्त चढ़ी थी विष की बानी ,
कहा बहुत विधि दशरथ ने ,
सब अनुनय विनय वृथा मानी ।

रट एक, 'राम वन जांय अभी ,
रख जटा-जूट सिर, तपसी बन ,
चौदह वर्षों वनवास रहे ,
रख लो कुल रीति, निभा लो प्रन ।'

प्रातः हुआ सब पुर में फैली,
चर्चा रानी के वर पाने की।
भरत लाल को तिलक और,
श्रीरघुवर के वन जाने की।

बाम विधाता हुआ अचानक,
सोच रहे सब, दाह हृदय।
'होती अनहोनी प्रभो आज,
यह केकई का कैसा अभिनय?'

कहता कोई यह भरत मंत्र,
है कोई कहता केकई खोट।
कुछ देते दोष नृपति को ही,
कर रहे चोट पर और चोट।

इधर राम ने हृदय समझ,
पितु असमंजस, मां का आग्रह।
सीता लक्ष्मण को लिया संग,
वन मार्ग गहा सानंद साग्रह।



छः

ले समाचार पहुंचीं सखियां,
मांडवी निकट, वह जहां खड़ी,
सजा रही थी आंगन ग्रह,
स्वयं करों, हो व्यस्त बड़ी।

हर्ष भरी आतुर सब कहतीं,
होकर मुदित, 'स्वामिनी सुन लो।
बन गई आज तुम युवरानी,
युवराजा भरत, बधाई लो।'

अनहोनी सी सुन पाई जब,
कांपी सहम, 'बात ऐसी क्यों?
यह परिहास कहां सीखा सखि,
सुख वर्षा में तड़ित पात ज्यों?'

'बात कहो समझा कर सारी,
यह अनुचित क्यों गिरा उचारी।
आज दिवस शुभ, पूज्य पिता ने,
तात तिलक की, की तैयारी।'

'कहो वही फिर सुख की बानी,
बात सुखद, सबने जो जानी,
नाथ और मैं सेवें युग युग,
राजा राम सिया महारानी।'

लख परिताप सखी पछताई,
फिर पूरी सब कथा सुनाई,
कैसे केकइ ने वर मांगे, अरु
वृद्ध मंथरा बनी सहाई।

सुनते ही, सीता वन जातीं,
लखन राम की बन संगाती,
बेसुध हुई गिरी धरनी पर,
दशा हृदय की कही न जाती।

छिड़का जल झारी से शीतल ,
चतुर दासियों ने घबरा कर।
ऊपर से फिर व्यजन डुलाया ,
आई सुधि, बोली पछता कर।

'माता मही समान मंथरा ,
यह कुमंत्र क्यों उनको भाया ?
नाथ नहीं घर, बात बात में ,
क्या मां के मन अंतर आया ?'

'मां ने सदा हृदय धन माना ,
मुझसे अधिक बहिन को जाना ,
आज हुई क्या चूक सभी से ,
उनको वन पहुंचाना ठाना।'

'मातु पूज्य, कहूं क्या उनसे ?
बहुत दूर, कह सकती जिनसे।
क्यों कर सहूं कठिन अति पीड़ा ,
व्यथा हृदय की खोलूं किनसे ?'

'कौन मातु को समझाये अब,
हाय विधाता, यह कैसा छल ?
आज प्रलय की बाढ़ वहां है,
सुख धारा बह रही जहां कल।'

'नाथ लौट कर जब आयेंगे,
प्रिय भ्राता को नहिं पायेंगे,
राम लक्ष्मण हीन भवन में,
किस विधि वे रह पायेंगे ?'

'केवल नहीं भ्रात की बिछुड़न,
मेरा भी है दोष इसे सुन,
रह पायें क्या प्राण ? सहेंगे
कैसे यह कलंक प्राण धन ?'

'इधर बिना जीजी के हम सब,
रहीं अकेली, कहो कहां कब ?
भाग्य हीन मेरे ललाट में,
था यह दुख भी, जाना अब।'

कैसे कहे, किसे बतलाये,
दुविधा पीड़ा मन अन्दर की।
तड़प रही बाहर आने को,
बात मांडवी के अंतर की।

कभी सोचती, राम तात के,
चरण पकड़ मग को छेकूं मैं,
कभी सोचती, मात सदन जा,
उनसे भीख मांग देखूं मैं।

सिया निकट जाने को मन है,
जकड़ा दुख ब्रीड़ा में तन है,
लौट लौट आती द्वारे से,
भिगो रहे मुख आंसू कन हैं।

साहस कर फिर आई बाहर,
वन जाते सीता को पाया,
सास संकोच, जेठ की लज्जा,
रुदन रुंधा स्वर, बोल न आया।

सीता कहती देख उसे, 'प्रिय
बहिन, विदा दो हुलस साधवी,
सौंप रही तुमको सेवा हित,
सास ससुर परिवार बांधवी।'

'शोक विकल जब भी प्रियजन हों
याद हमारी जब भी आवे,
बहलाना कह कथा पुरातन,
कष्ट न इनको होने पावे।'

'देवर से कहना नेह भरी
आशीष हमारी, बहिन अरी,
अतिप्रिय, भोले भाव भरे,
मिल पाये नहिं उर कसक खरी।'

'उर्मिल का रखना ध्यान जरा,
लक्ष्मण वियोग का दुख उमड़ा,
मेरी ही भगिनी हो दोनों,
कर्तव्य बोध मन ज्ञान बड़ा।'

इधर विदा सीता ने मांगी,
उधर राम बन कर बैरागी,
भवन छोड़, वन ओर चले हैं,
संग लखन रघुवर अनुरागी।

सिय वियोग दुख भर अन्तर में,
रह गई मांडवी, अश्रु बहाती।
भरत लौट आयें जल्दी से,
आतुर हो भगवान मनाती।

गये राम दशरथ ने जाना,
नहीं आयु अब, मन अनुमाना।
राम राम कह त्याग दिया तन,
जीवन मर्म सत्य पहचाना।

लौटे भरत तुरंत अयोध्या,
पाकर सचिवों का सन्देश,
समाचार नहिं पूरे पाये, उर
शंकित देखा पुर परिवेश।

वन उपवन सब सूने सूने,
तप्त बयार लगी तन छूने,
बात न कोई करे, क्षुभित सब,
पूछें कुछ, रोवें दुख दूने।

ज्यों पतझड़ के आते ही,
वसंत बहार चली जाती।
पुरवासी सब दुखी मौन,
नगरी विधवा सी दिखलाती।

जैसे ही पहुंचे राज भवन,
आ गई मंथरा, भर उमंग,
रस ले लेकर बात बखानी,
और बलैयां लीं संग संग।

समझ न पाये भरत बात जब
चेरी बोली यों हर्ष भरी।
'जाकर पूछो अपनी मां से
कैसे सब बात बनी संवरी।'

विश्वास नहीं तब भी आया,
मात निकट को पांव बढ़ाया।
सजा भवन, औ दास.दासियां,
आरति लिये मात को पाया।

दृश्य अजब था, मेल न खाती
निश्प्राण सदन, दीये की बाती,
विधवा का परिवेश मात का,
मुख पर विजय रेख मंडराती।

सहमे भरत, बिलख फिर बोले,
'आज बात अनहोनी हो ले।
पिता स्वर्ग, औ भ्रात गये वन,
मेरा राज तिलक सुख घोले।'

'माता जन्म दिया तुम ही ने,
शिक्षा ज्ञान दिया तुम ही ने,
अपना सदा राम को माना,
भ्रात प्राण प्रिय कहा तुम्हीं ने।'

'आज हुआ क्या तुम्हें अहो ?
इस व्रीड़ा को तुम्हीं सहो।
मां अपराध हुआ क्या जिसका,
दंड दिया यह हमें, कहो ?'

तुरत लौट आये महलों से
कौशल्या के निकट सिधाये।
गिरे धरनि, अति व्याकुल हो,
आतुर जननी ने हृदय लगाये।

'हुआ अनर्थ, मात यह कैसे ?
मुझे बता दो खोट जहां थी।
राम सिया संग बन जा पाता,
भाग्य रेख मम हाथ कहां थी।'

'पिता धन्य सुरलोक गये
हैं हम हत्भागी, दुक्ख सहे,
कारण स्वयं बने निज दुख के,
परिताप ताप में हृदय दहे।'

मां रो दी सुन वचन भरत के ,
'विधि अति कठिन तुम्हारा मन ।
देख नहीं पाते मानव को
पूर्ण सुखी, जग में, हर छन ।'

फिर बोली कुछ धीरज धर ,
दूं दोष किसे यह नहीं खबर ,
विधि लिखा माथ जो, भोग रहे ,
बेटा मानव क्या सकता कर ।'

'नहीं राम जाने का दुख ,
स्वामी भी हो गये विमुख ।
बिना राम, तज दिया जगत ,
पाया जीवन का सच्चा सुख ।'

'अब आस तुम्हारी है केवल ,
दुखित मौन को तुम ही जल ।
मत हो अधीर हे भरत ललन ,
तुम ही हो सबका सम्बल ।'

'पितु काज अभी है शेष सभी
जीवन गति यह रुकती है कब।
बुला सचिव गुरु परिजन को,
करना क्या बैठ विचार करो अब।'

'भाग्य हमारा गति विधना की
दोष नहीं केकई का इसमें।
तिरस्कार मत करना, किंचित
कष्ट न पावे, भोली जिसमें।'

शीतल मृदु वचन सुने मां के,
लग सरल हृदय उर बोध हुआ।
जैसे तपित निदाघ मध्य
आ बरसा जल, सम्बोध हुआ।

जैसे ही जाना भरत आगमन,
गुरु वशिष्ठ औ सचिव स्वजन
राज द्वार पहुंचे जा कर,
जुड़ गये सभी पुरजन परिजन।

भरत कहें, 'गुरु तुम्हीं कहो,
करना क्या है, अब मुझे अहो,
आज्ञा भर का हूं अभिलाषी,
कार्य भार सब तुम्हीं गहो।'

बोले वशिष्ठ, 'अब प्रथम रीति
नृप क्रिया कर्म की हो सारी,
फिर बैठ विचार करें हो कब
राजतिलक की तैयारी।'

'पुर राज्य तुम्हीं को करना है,
पितु वचन, तुम्हीं को भरना है,
हां, ना, का अर्थ नहीं कुछ भी,
कुल रीति तुम्हें अनुसरना है।'

आकुल हो बोले, 'क्षमा करो,
गुरुदेव, धृष्टता क्षमा करो,
किसी भांति रघुबर लौटें घर,
इतनी गुरुवर दया करो।'

'रघुकुल रीति कहां यह पाई,
चढ़े सिंहासन छोटा भाई,
अग्रज फिरे, बना तपसी वन,
नीति नहीं वेदों ने गाई।'

'राज्यासन पर बैठ सुखी मन,
राम भाग क्या भोग सकूं मैं?
जीवन मंत्र यही उर इच्छा,
सर्वस अग्रज को सौंप सकूं मैं।'

दुख देख, दुखी नर सकल हुए,
आंखें भीगीं, मन विकल हुए।
भरत हृदय में भाव अनोखे
राग त्याग सम्मिलित हुए।

बुला वशिष्ठ ने सचिवों को
समझा दिया कार्य भार सब।
सौंपे सबको अलग अलग,
विधि विधान जो होने थे अब।

सब हुआ कार्य नियमानुसार
जल तर्पण औ पिण्ड दान।
पूजन कर विप्र गणों का,
शुचि दान दिये सब को सनमान।

पहुंचे निज सदन राम भ्रात,
सांध्य समय अति श्रांत क्लांत
पाया प्रिया मांडवी को, दृग
अश्रु भरे, अति शिथिल गात।

वह उत्फुल्ल कली पाटल की,
कुम्हला कर श्री हीन हुई।
पड़ी हुई थी यों निढाल ज्यों,
नीर से न्यारी मीन हुई।

देख भरत को उठी तनक,
फिर लोट गई अकुला भू पर।
'नाथ किया इतना विलम्ब,
खो गया सभी, हैं रहे प्रान भर।'

व्याकुल हो उठा उसे कर से,
बोले, 'कुछ धीर धरो मन में।
प्रियतमे दोष नहिं मेरा कुछ,
तज मान, क्षमा कर दो मन में।'

विह्वल मांडवी, 'नाथ कहो मत,
मुख से ऐसे कठिन वचन।
दोष तुम्हारा हो सकता कब ?
साक्षी अन्तर, साक्षी यह मन।'

फिर मुख छिपा वक्ष में रो दी,
अश्रुधार उर भिगो दिया।
भरत नयन भी बरसे आंसू
भीग प्रिया का शीश गया।

दे रहे अपर को धीरज औं,
स्वयं व्यथित, पीड़ा अंग में।
अनुराग अवतरा मूर्तिमान,
ले करुणा को अपने संग में।

हो कुछ सुचित्त पोंछे आंसू
आपस में चाहा बात करें।
नयन बावरे, फिर भर आये,
आकुल चित नहिं धीर धरें।

मौन सदन, बस भरत प्रिया की
सिसकी का स्वर रहा उभर।
व्यथित भरत, नहिं शब्द अधर,
पल पल पीड़ा उर रही निखर।

लखन राम का स्नेह प्यार, वह
सामीप्य सौख्य सुधि अतीत की।
करती विदीर्ण उर,आन जगाती,
अंतर में ध्वनि करुण गीत की।

बोले भरत, 'रहीं तुम चुप क्यों ?
जा मात निकट उनको समझातीं।
या फिर लेतीं पकड़ भ्रात पद,
बात यहां तक क्यों बढ़ पाती।'

नयन झुका, स्वीकार दोष,
मृदु स्वर में बोली कर साहस,
'तुम नहीं निकट, थीं पूज्य मात,
कहती किससे, प्रिय थी परवश।'

'कितनी तड़पी, क्या तुम्हें कहूं,
अपनी पीड़ा को स्वयं सहूं।
प्रान मिले तुमको पा कर, अब
कह लूं सब क्यों मौन रहूं।'

'यदि उपाय बन जाये कुछ,
आधार मिले आकुल मन को।
सब चलें ढूंढ़ने कानन मिल
लक्ष्मण सीता औ रघुबर को।'

'पा अवसर उनको घेरें वन में,
चरण पकड़ लें मिल कर सब।
स्नेह और अनुरोध सभी का,
नहिं टाल सकेंगे रघुवर तब।'

'पितृ मरण सुन शोक विह्वल हो ,
अश्रु दृगों में भर लावेंगे ।
दीन हीन परिवार निरख
निश्चय लौटें, घर आवेंगे ।'

सुन कर बात प्रिया की, धीरज
तनक भरत के मन को आया ।
आशा जगी, डूबते मन को ,
मिला सहारा, सम्बल पाया ।

बात चित्त में थी पहले भी ,
अब मन ने दृढ़ गांठ लगाई ।
राम सिया की चर्चा करते ,
निशि बीती, उषा जग आई ।

प्रात किरण ने छुआ जभी ,
निस्तब्ध अवध नगरी का गात ।
हलचल मची, जगी शंकाएं ,
करते सभी तिलक की बात ।

यहां भरत ने उठते ही जा,
गुरु चरणों में शीश नवाया।
अनुशासन पा उर व्यथा कही,
अपना निश्चय भी समझाया।

बतलाइ मांडवी की इच्छा भी
फिर अपनी दरश लालसा उत्कट,
'यदि हो सहमति, तो सभी चलें,
वन ओर सिया रघुवर निकट।'

'लौटा घर लावें अग्रज को,
सजे मुकुट उनके सिर पर।
आयसु हो तो गुरुदेव करे,
प्रस्थान आज ही सब मिलकर।'

'एवमस्तु' बोले गुरुवर, 'प्रिय
भरत तुम्हारी युक्ति भली।
धर्मशील, तुम राम भक्त हो,
कही नीति, उर प्रीति पली।'

'मांडवी वधू के अन्तर का,
यह आग्रह व्यर्थ न जायेगा।
अनुरोध सिया भगिनी उर का,
कुछ शुभ फल ही दरसायेगा।'

पा कर वशिष्ठ से अनुमोदन,
अस्थिर मन को साध भरत।
अति उतावले लगे सजाने,
प्रस्थान हेतु सब साज तुरत।

सात

सुन पाया जिसने, चलै भरत ,
चल पड़ा साथ, 'अब रोको मत ,
अवधपुरी नहिं काम हमारा ,
राम निकट चलना झट पट।'

गुरु, माता, मंत्री, पुरवासी ,
तत्पर सभी, सभी अभिलाषी ,
कहते विलम्ब कैसा, जल्दी से ,
चलो जहाँ रघुबर सुखरासी ।

भरी लाज संकोच केकयी ,
उर परिताप, क्षणि अति काया ।
कौशल्या के निकट गई, मुख
मौन, दृगों ने दुख प्रकटाया ।

राम मात बोलीं, उर से ला,
बूझ हृदय की बात हृदय से,
'अब विलम्ब क्यों, दुविधा कैसी,
बैठो रथ में निकल अलय से।'

सज गये अश्व, रथ ध्वजा भली,
रनवास चला, संग सुघर अली,
आगे भरत चले पग पैदल,
चतुरंगिनी पीछे सेन चली।

देख भरत को, पाँव पयादे,
रिपुसूदन झट रथ से उतरे,
मांडवी, कीर्ति, उर्मिल ने भी,
वाहन तज धरनी पांव धरे।

सुत को, औ सुत वधुओं को,
देखा जब चलते पैदल आगे।
बुला निकट मां कौशल्या ने,
कहे वचन अमृत रस पागे।

'लालन मेरे, छोड़ो हठ तुम,
समय नहीं पैदल चलने का।
बैठ तुरंग चलो सत्वर, मन
प्यासा रघुवर दर्शन का।'

'वैसे भी हैं यह प्राण दुखी,
और न इनका कष्ट बढ़ाओ।
नयन सुखी हों देख तुम्हें,
जल्दी से वाहन मंगवाओ।'

जैसी आज्ञा, कह मंगा अश्व,
भरत चले भ्राता समेत।
रथ पर जा बैठीं वधुएं भी।
कानन जाते सब तज निकेत।

जब पहुंचे जाकर गंग तीर,
भेंट निशाद लाया झट पट।
रामचरण अनुराग जान कर,
प्रभु शयन जहां दिखलाया वट।

देख कठिन कुश की शैया वह,
भरत प्रिया आंसू भर लाईं,
'तन कोमल अति कुश कठोर यह,
जीजी, कैसे तुम सो पाईं।'

भरत लाल ने माथ झुका कर,
सोचा निज उर में सकुचा कर,
'मेरे पापों का है यह फल,
भोग रहे हो तुम क्यों रघुवर ?'

फिर निशाद से बोले बानी,
दुविधा निज अन्तर की आनी,
'याद अभागे भरत भ्रात को,
करते थे क्या सारंग पानी ?'

बोला गुह, 'है सत्य बात, तुम
सा प्रिय कोई नहीं जान लो,
याद जिसे करते ही झरते,
राम नयन से अश्रु मान लो।'

सुन यह, भेंटे भरत भाव भर,
सुख पा गुह को लिपटा उर से।
अश्रु धार, सुख सरिता संग संग,
वह रही नयन से, अन्तर से।

अनगिनती नौकायें आकर,
लग गई जाह्नवी के तट से।
निषादराज का पा सम्बल,
हो गई पार गंगा झट से।

चित्रकूट की ओर चले, उर
हर्षित सब, गुह मिले भले।
सुधि पाई राम जानकी की
मृतप्राय सभी थे, प्रान मिले।

कंकरीला मग, कांटे हर पग,
बेरी को घेरे जरियां हैं।
अति घनी करौंदों की झाड़ी,
कहिं कहिं छोटी टेकरियां हैं।

भांति भांति के वृक्ष, लिये
फल फूल, राह में आ झूले।
थे पुष्प खिले पा राम दरश,
लख भरत फले सब रितु भूले।

वायु संग जब उड़े धूल, आ
छाये माथे पर; मुख पर।
पावन मान उसे हर्षित सब,
'रामचरण रज है सुख कर।'

मांडवी देख कानन सुन्दर,
उर्मिला कीर्ति से कहे, 'बहिन।
शोभा न्यारी वन दृश्यों की,
लगती नवीन प्रति पल प्रति छन।'

'तरु लतिकायें ये इंगित से
हमको वरवस निज निकट बुला।
कहते पल भर बैठो आकर,
श्रीराम रुके थे इसी शिला।'

'पुष्पित लाल पलाश नहीं यह ,
झरे सिया पद कन रक्तिम ।
कंटक छू आकुल गिरे धरा ,
बन गये पुष्प सुन्दर अनुपम ।'

'सन्नाटा दिन का रोक रहा ,
मत करो शोर, हो रहो शांत ।
थे इसी डगर से गये राम
हर पल दुहराती उष्ण वात ।'

'कन-कन में रम रही यहां ,
लखन राम सिय की छाया ।
हर पात मुखर हो बोल रहा ,
दरशन पाया, दरशन पाया ।

देखा कामद् गिरि जब सन्मुख ,
निषाद राज ने कहा दिखा ।
'राम निवास शैल की शोभा ,
अब निरखो नयन पसार सखा ।'

भरत भ्रमित से देख चतुर्दिक
राम कहां, मन लेख रहे हैं।
हृदय संकोच, दरश आतुर दृग,
थिर न भाव मन एक रहे हैं।

वृक्षों के पीछे कुछ हट कर,
पर्ण कुटी छोटी सी सुन्दर।
सन्मुख लिपी पुती वेदी के,
राम विराजे धनुष बान धर।

निकट सीय अति सुकुमारी,
मुख प्रसन्न शोभा न्यारी,
पूछ रही थीं भर उमंग उर,
लक्ष्मण से हर्ष भरी हारी।

'सच ! आये क्या देवर द्वय,
साथ मात पुरजन सब आये ?
मांडवी बहिन ओ लली उर्मिला,
कीर्ति आदि की कुछ सुन पाये ?'

'बहुत दिनों में देख उन्हें,
उर लगा तृप्त हो जाऊंगी।
मुख देख जिया करती थीं ने,
फिर आज सभी को पाऊंगी।'

'अति व्याकुल थी बहिन मांडवी,
अश्रु भरे दृग, बोल न पाई।
आते समय उसे उर ला कर,
प्यार कहां मैं भी कर पाई।'

'साथ रहे बचपन से दोनों,
हैं आज विलग, दुख पाती हूं।
कम्पित अधर, अश्रु धारा दृग
वह छवि भुला नहीं पाती हूं।'

'किन्तु लला क्यों तुम उदास,
कह दो जल्दी क्या बात हुई?
आ गई याद उर्मिला बहन,
या विधि ने की कुछ घात नई?'

'भाभी केवल रनवास नहीं,
सेना चतुरंगी साथ लिये।
भूले रण कौशल रघुवर का,
आ रहे भरत कुछ घात लिये।'

विहंसे रघुनायक बात सुनी,
'लक्ष्मण तुम बस समर धनी,
क्या हुआ अगर संग चतुरंगी,
है हाथ तुम्हारे धनुष अनी।'

'पर धीर धरो मत हो आकुल,
गुरु और मात का मान करो।
भरत हृदय नहिं खोट जरा,
मांडवी बहू का ध्यान करो।'

'कुछ याद करो बचपन अपना,
है स्नेह भरत मन का कितना,
थीं देह विलग, उर एक रहे,
पायें वे सुख क्या राज बना?'

फिर तनिक देर की बात अभी,
आये जाते हैं निकट सभी,
क्यों वृथा रोष छाया मन में,
जल्दी ना करो विचार कभी।'

कुछ लक्ष्मण दे पाते उत्तर,
आ गये भरत तब तक आकुल।
पाहि पाहि कह गिरे भूमि,
अति विकल अंग थे, स्वर व्याकुल।

वरबस उठा, राम ने उनको,
लगा हृदय से वोध दिया।
मुड़े भरत, सिय के चरणों में,
टिका तुरत ही माथ दिया।

नयन अश्रु से सीता पद धो,
हृदय ग्लानि वह रहे बहा।
भाभी के आंसू शीश टपक,
देते अशीष, था स्नेह महा।

भेंटे फिर लखन चरण छूकर,
दुविधा छोड़ी, मन शुद्ध किया।
सुख अश्रु नयन, मुस्करा रहीं,
निकट खड़ी प्रिय भवज सिया।

पीछे आता दल हुआ निकट,
उर उमग सिन्धु ने चंद छुआ।
हर मन में सुख का ज्वार उठा,
उमड़ी लहरें आकाश छुआ।

जननी लगा वक्ष से सुत को,
शोभित, ज्यों नव पल्लवित वेल।
भ्राता से भ्राता हृदय लगे,
ज्यों शाख उलझ कर रहीं खेल।

शीश झुके, मिलती आशीष,
बांहें भेंटी उर कमल खिले,
बहिनें सब लिपटीं आपस में,
मृदु हास रेख मुख, अश्रु मिले।

सहम गई सीता मन में,
वह देख कुवेश सास तन में,
साहस न हुआ पूछें कुछ भी,
शंकित, जल भर लाई दृग में।

मां चरण वंद औ' उर से लग,
व्याकुल रघुनाथ देख सबको,
डरते से पूछ रहे गुरु से,
'प्रभु बात बता मेटो भ्रम को।'

'हैं कुशल तात ? उन बिना सभी,
यहां अवध तज कैसे आये ?
मातायें क्यों दीन दुखी हैं,
जैसे नलिनी निशि के पाये।'

समझा बोले गुरुवर वशिष्ठ,
'यह जगत सार बिन है सारा।
जीवन मरण सभी विधि के वश
काल कहो कब किससे हारा।'

'नृपराज गये सुरलोक, आज
हम तुम्हें मनाने आये हैं।
सूनी अवध, भवन सब सूने,
भरत सभी तज आये हैं।'

हो विकल, रहे कुछ देर मौन,
फिर कहा राम ने मन को तोल।
'रूठा कब था गुरु पूज्य कहो,
मैं पाल रहा केवल पितु बोल।'

'किन्तु नहीं है समय अभी,
कुछ कहने का या सुनने का।
माता सहित सभी परिजन
हैं श्रमित, प्रबन्ध करें उनका।'

'मैं भी जा मन्दा के तट पर,
स्नान ध्यान कुछ कर आऊं।
तर्पण अर्पण करके मन को,
पितु स्मृति में बहला आऊं।'

यथा योग्य मन चाहे, सबके
लिये तुरत ही वास बने।
तरु पल्लव के औ' शाखों के
रुचिर कुटी आवास घने।

निंदिया किन्तु भटक हारी,
मुँद सके नयन ना एक घड़ी।
संकल्प विकल्प बीच बीती
निशि, अंतर में थी दाह बड़ी।

प्रात पहर आ गई जानकी,
मात जहां सब ठहरीं थीं।
सेवा में प्रस्तुत सब वधुएं,
उर श्रद्धा निष्ठा गहरी थी।

चरण पूज कर सासों के,
मांडवी निकट जाकर बैठी।
वह बंधा रही थी धीर, और
केकई ढांके मुख थी लेटी।

देखा सीता को उठी तुरत,
फिर लौट गई होकर आकुल।
'मैं किस विधि मेट सकूं बोलो,
अपनी करनी' कहती व्याकुल।

भरत प्रिया संग जनक सुता,
बैठी 'जैसे संकुचित कली।
केकई कहती, 'ओ वधू मांडवी,
समझा दे अब इसे भली।'

'सहा सभी ने विधि का लेखा,
जाने कैसा वह मति भ्रम था।
अब लौट चलो रघुवीर सहित,
प्रिय वधू मान लो व्यतिक्रम था।'

'पा चुकी दण्ड निज कर्मों का,
वैधव्य स्वयं ही अपनाया।
बांधवी सुमित्रा बहिन और,
कौशल्या को भी संग तड़पाया।'

'है कठिन बड़ा यह दुख सहना ,
अब लौट अवध को चलो संग ,
दुख ग्लानि मिटे उर हर्षित हो ,
नव जीवन पा लें थकित अंग ।'

सीता बोली छू चरण विनत ,
'मां दोष नहीं, परिताप न मन ,
आना जाना नहिं हाथ मेरे ,
बदलू विधान कैसे इस क्षण ?'

'मैं अनुचरी, काम पीछे चलना ,
वे ताप बने, हिम बन गलना ,
आकांक्षा केवल इतनी बस ,
स्वामी बिन प्रान रहें तन ना ।

'कैसे साहस कर सकूं मात ,
कह दूं कैसे क्या करो काज ?
थी सुखी वहां भी महलों में ,
हूं सुखी साज बन चीर आज ।,

तब तक बोल उठी मांडवी,
'जीजी कुछ मेरी भी सुन लो।
है असह अवध का वास हमें,
लो, उपाय मन में गुन लो।'

'या तो लौटें सब साथ भवन,
हो बात मात के मन जैसी।
है पूज्य पिता के बिना अवध,
लगती असहाय, सकुच कैसी?'

'नहीं उचित यह लगता यदि,
तो एक रूप हैं दोनों भाई।
देह अलग, मन एक सदा,
हम दोनों भी गईं कहाई।'

'हैं एक रूप, मन एक बदल लें
भाग्य, सुखी सबका मन हो।
साकार स्वप्न होवें सब के
पल जाय अवध, मन का सब हो।'

'लौटो घर को तुम और तात ,
हम दोनों कानन जाँय अभी ।
मनवा दो अग्रज से जीजी ,
मांगा तुमसे कुछ है न कभी ।'

'इतनी सी रख दो बात बहिन ,
जंगल में हम रह जांय यहां ।
आंचल फैला कर मांग रही ,
दो भीख, रहें नहिं प्रान वहां ।'

'तुम ही समझाओ देवर को ,
अति विकल तुम्हारी आस रही ।
और न कुछ यदि हो पाये ,
लो साथ न जाती व्यथा सही ।'

निज रुद्ध स्वरों को सहला कर ,
जब तक सीता कुछ कह पाती ।
आंखों के आंसू रोक तनक ,
भगिनी को कुछ समझा पाती ।

सुन पड़ा, लिये रनवास संग,
मिथिला से आये जनक राज।
केकई विकल, जा कहां छिपूं,
ग्लानि भार उर, दबी लाज।

'सीता सकुचित मन हुईं सुखी,
मांडवी आस जागी अन्तर।
अब तात साथ देंगे मेरा, लख
मब की व्यथा, दया पा कर।'

उधर मांडवी हो आशान्वित,
बुनती सुख का ताना बाना।
इधर अयोध्या वासी भी थे,
हर्षित जान जनक का आना।

अन्तर अधिक उछाह भरे,
घेरे बैठे सब रघुवर को।
काम नहीं है बन में कुछ,
अब लौटो राम, चलो घर को।

भांति भांति के तर्क गढ़ें,
समझा कर कहते रघुवर से।
'प्रभु सहज नहीं छोड़ेंगे हम,
कानन बसने निकले घर से।'

हंस देते राम तर्क सुन कर,
बस मौन अस्त्र कर के धारण।
आग्रह, अनुनय, विनय, सभी
हैं हार रहे जिसके कारण।

तर्क वितर्क समय बीता,
रवि ने थक कर ली अंगड़ाई।
अस्ताचल पर, नभ आंगन में,
झलकी संध्या की परछाई।

विवश उठे सब, प्रभु इच्छा का,
यद्यपि मिला नहीं अनुमान।
आशान्वित था हृदय, सोचते
लौटे निश्चय प्रभु विनय मान।

अवसर पा पुत्रियां मिलीं
निज तात मात से हो आतुर।
विदेह, विदेह हुए सुख से,
चारों निधियों को ला निज उर।

लख पाया हर्ष भरी सीता,
उर्मिला, कीर्ति अति लखीं दुखित।
मांडवी क्लान्त विभ्रान्त खड़ी
दृग अश्रु भरे था आकुल चित।

निकट बिठा, फिर परस शीश,
कुछ हरा कष्ट भार उसका।
समझाया सभी सुताओं को,
'है भाग्य लिखे पर बस किसका।'

'तुम ने स्वामी का साथ निभा
सीते ऊंचा कर दिया माथ।
आशीष यही, पथ हो सुखकर,
वन, उपवन सा रघुवीर साथ।'

'उर्मिल का भी सौभाग्य बहुत,
लक्ष्मण का पुण्य मिले सारा।
हर्ष सहित वन भेज उन्हें
कर्तव्य प्रेम को दिया सहारा।'

'श्रुतिकीर्ति कहूं क्या तुम्हें, अभी
हो छोटी, पर सिर भार बहुत ।
सेवा में सास स्वजन की ही
करना अपना जीवन आहुत ।'

फिर मुड़े मांडवी ओर विकल,
वह स्वयं बनी करुणा सन्मुख ।
बैठी थी नीचे नयन किये,
भाव भरा उर, नहिं स्वर मुख ।

लगा हृदय से, विगलित स्वर में,
कहा, 'सुता, सब समझ रहा ।
अपना ही नहीं, भरत की भी
व्रीड़ा का उर पर भार सहा ।'

वह गिरी गोद में हो आतुर,
जैसे ही इतना सुन पाया ।
'हा तात चरण, क्या पाप किया,
जिसके कारण यह दुख पाया ।'

'शरण तुम्हारी, कर उपाय कुछ,
बाध्य करो जायें घर वापस,
जीजी, जेठ, मिटेगा तब ही,
सबका दुख, इनका अपजस।'

'यदि कानन वास बिना न बने,
वन जायें हम दोनों सुख संग।
बहिन और रघुनाथ बिना,
सब व्यर्थ अवध के राग रंग।'

उर ला दुखिनी बिटिया को
रो दिये जनक सब ज्ञान भूल।
वे नेह सने अटपटे बोल,
गड़ गये हृदय में बने शूल।

किसी तरह धीरज धर उर,
बोले, 'मत विकल करो मन को।
वत्से घर लौटें रघुनायक
प्रिय यह हमको, तुमको, सबको।'

अतः बैठ कर होगी सबसे
चर्चा, शायद कुछ बात बने।
हो सकता है मिट जायें ये
दुख घन, जो छाये घने घने।

'रघुपति के मन में क्या है कुछ
थाह मिली नहिं अभी हमें।
हंसकर, मुस्का कर टाल रहे
अनुरोध, न जाने क्या उर में।'

'लगता तनिक कठिन ही है
हिलना उनका वन प्रांगण से।
पर भरत भाव भी ऊंचा है
क्या ठेल सकेंगे वे मन से?'

'नहिं रहीं विलग तन से, मन से
विकसी जब से कुल फुलवारी।
मेरी अंखियां तुम दोनों हो,
मुझको तुम दोनों ही प्यारी।'

'विदित सभी को, सभी जानते
भरत भक्ति भोला स्वभाव।
मुझसे अधिक ज्ञात किसको है
तुम दोनों का प्रीति भाव।'

'बस यह प्रयास करना है अव
कुछ भरत हृदय को बोध रहे।
रघुवीर बात मानें तो यदि
सुख पायें हम, सब क्षोभ बहे।'

निशि बीती, ऊषा ने झांका
प्राची से, फैला किरण जाल।
अति आकुल से रघुवीर निकट
आ गये सभी उठ कर तत्काल।

खग, मृग, तरु, लतिका वन के
हो मौन शांत निस्तब्ध रहे।
पवन थमा, डरता डरता सा
इधर उधर कहिं तनक बहे।

रघुवंश इष्ट कुलदेव सूर्य भी
थकित देख उर भाव बड़ा।
चलना चाहा ज्यों ही मग में
मचले तुरंग रथ वहीं अड़ा।

मिथिलापति औ गुरुवर वशिष्ठ
पुरजन परिजन दोनों पुर के,
मातायें भी आ बैठीं कहने
अपने सब भाव विकल उर के।

सीता के पीछे कुछ हट कर
मांडवी, कीर्ति, उर्मिल बैठीं।
सुन रहीं ध्यान से प्रत्युत्तर
आकुल आशंका उर पैठी।

राम निकट सन्मुख उनके
आसीन भरत, थे नयन झुके।
संकोच, शोक, चिन्ता, व्रीड़ा
सब एक साथ आ हृदय रुके।

थे राम धीर गम्भीर, हास्य,
पिछले दिन का था लुप्त हुआ।
लगता था मानों मन ही मन,
संकल्प नया कुछ गुप्त हुआ।

देख सभी को वहां उपस्थित
कर प्रणाम बोले रघुराज,
'गुरुवर अब विलम्ब कैसा है
जुड़ आया है सभी समाज।'

'पालन करने को तत्पर मैं,
जो भी आज्ञा हो आप कहें।
कारण बिना नगर के वासी
क्यों कानन के कष्ट सहें।'

'मैं हूं सेवक, प्रभु स्वामी हैं,
चिन्ता दुविधा क्यों है इतनी ?
अनुचर के होते दुख पायें
यह नहीं उचित है ज्ञान धनी।'

संकोच और उर की पीड़ा से
देख भरत का झुका माथ।
मन ही मन होकर आकुल
कहते वशिष्ठ, 'सुन लो रघुनाथ।'

'भरत हृदय की प्रीति रीति
अति गहन नहीं कह पाऊंगा।
लेकिन उनकी इच्छा में ही
मैं भी पूरण सुख पाऊंगा।'

'तुम करो वही जो भरत हृदय
को हो अनुकूल राम मेरे।
वे अतिशय दीन दुखी आकुल,
है व्यथा बहुत उनको घेरे।'

'हो भरत हृदय को बोध और
माता परिजन भी सुख पावें।
हे पुण्य धाम, तुम करो वही
पितृ वचन कि जिससे पल जावें।'

सुन कर तोला निज अन्तर को ,
फिर मुड़े जनक की ओर राम ।
'हैं तात पूज्य अनुभवी आप ,
करना क्या उचित, कहें अभिराम ।'

'है बात वही जो गुरु कहते
बस भरत व्यथा का ध्यान रहे ।
अभिलाष यही सुख पायें सब
संग रघुकुल का भी मान रहे ।'

इतना कह मौन विदेह हुये
भावना वेग स्वर रुद्ध हुआ ।
रघुपति के भी उर अन्तर में
कर्त्तव्य, नेह का युद्ध हुआ ।

छाया कुछ क्षण करुण मौन ,
फिर कहा कैकेयी ने धर धीर ।
'ब्रीड़ा बहुत सही है लालन ,
सह पाता नहीं हृदय अब पीर ।'

'दोनों वर मैंने मांगे थे
मैं स्वयं उन्हें लौटाती हूं।
मुझ से था अनुबंध हुआ
मैं ही उससे फिर जाती हूं।'

'मिला मुझे था जो स्वामी से
भरत वही ले कर आया।
सौंप रहा वह तुम्हें आज,
जो राज्य पिता से था पाया।'

'स्वेच्छा से जब वह सौंप रहा,
क्या बाधा फिर अपनाने में ?
परिताप मिटाने को मन का
गृह लौटो, आई मनाने मैं।'

'लौटो घर लाल, दुखी मन को
वैधव्य भार ही बहुत अरे।
जी पाऊंगी कैसे बोलो
अन्तर में इतनी व्यथा भरे।'

'मां उचित तुम्हारा कहना है,
प्रत्युत्तर देता क्षमा करें।
हूं पुत्र तुम्हारा, अनुगत मैं
यह बुद्धि तुम्हीं में रमा करें।'

'धूमिल हो यदि सुयश तात का
सह पाओगी क्या उसे कहो ?
बात नहीं बस की मेरे यह,
वर दिया तात ने मात अहो !'

'पिता स्वर्ग तो बेटा उनका
पाले प्रण जग में रीति यही।
इससे हट कर तुम सभी कहो
कब वेदों ने है नीति कही।'

'हे भैया भरत तुम्हीं बोलो
क्या उचित ? सभी स्वीकार्य मुझे।
है शीश तुम्हारे भार सभी
कह दो करना क्या कार्य मुझे।'

सुन कर अग्रज की बानी को,
भरत घड़ी दो-मौन रहे।
कर्तव्य स्नेह का झगड़ा था
गम्भीर, थाह फिर कौन गहे ?

'मन धीरज धर, धर चरणों में
निज शीश, कहा मांडवि पति ने,
'है उचित तुम्हें अग्रज मेरे, यह
प्रीति नीति, तुम स्नेह सने।'

'सुत उसी पिता का हूं मैं भी
जो गया स्वर्ग निज वचन हेतु।
अब और न कुछ कह पाऊंगा,
हो वही कहें जो धर्म सेतु।'

'है एक विनय मेरी छोटी
लघुता से लगती भारी है।
आप करें स्वीकार राज्य, मैं
प्रतीहार बनूं मन धारी है।'

'ले कर इन चरणों की पादुक ,
मैं चला अवध को जाऊंगा ।
राज्य करेंगे तात चरण, मैं
सेवक बन कर सुख पाऊंगा ।'

धन्य धन्य कह उठे सभी ,
उत्तर न राम को ढूंढ मिला ।
भरत भाव, रघुवीर आन,
दोनों तुलते कर्तव्य तुला ।

'कह, 'एवमस्तु', रघुनन्दन ने
झुक लिया अनुज को हृदय लगा ।
चरणों से लिपट भरत बोले ,
'हूं सुखी भ्रात, मम भाग्य जगा ।'

इधर हुये नत भरत, शीश धर ,
चरण पादुका अग्रज की ।
उधर मांडवी चिन्तित व्याकुल ,
बात न पूर्ण हुई मन की ।

उर सहमी सी, देख सिया को
बार बार यह सोच रही।
घर लौटेंगी नहीं बहिन अब,
उलझन मन में, दृग धार बही।

राम चरण में सौंप राज्य
जब भरत बने उनके प्रहरी।
कुछ मुरछित सी हुई वधू,
निश्वास जगी उर में गहरी।

आगे के चौदह वर्षों का
दृश्य नयन में झूम गया।
अवध वास बिन राम सिया,
भरत क्लेश दृग घूम गया।

'कैसे काटेंगे अवधि सभी
कैसे यह दुख सह पायेंगे ?
तात राम औ लखन जानकी
कैसे वन में रह पायेंगे ?'

लौट रहे हैं सभी अवध को
प्राणहीन सा तन ले कर।
रह गये हृदय रघुवीर निकट,
खोया खोया सा मन ले कर।

राम दरश पाकर सोई थी
जो वियोग की पीर स्वजन की।
जाग गई वह, लौट पड़ी फिर
करुण खिन्नता मन की तन की।

आते समय उतावल से पग
अब न तनक बढ़ते हैं आगे।
बार बार कह रहे सभी,
है अवध अभागी बन के आगे।



नौ

थे भरत चल रहे मौन शांत,
चिन्तित, कैसे कर्तव्य पले।
नये नये आते विचार उर,
उलझन उठती मौन तले।

देखा प्रियतम का विकल मौन
वह त्याग रूप, जोगी स्वरूप।
सूखी जैसे जल बिन लतिका
ऊपर से हो अति कड़ी धूप।

आतुर हो उठी माण्डवी, मन
हुआ नहीं समझाये बोध।
रोके बहुत, नहीं माने दृग
बहने लगे अश्रु मग शोध।

अनुमान लगा प्रिय पीड़ा का
सहमी, डरा हृदय वह भोला ।
भाव उमड़ आये अन्तर के,
साहस किया तनक मुंह खोला ।

'दासी हूं औ सदा रहूंगी
विधि विधान जो सभी सहूंगी ।
पर न अलग चरणों से रखना,
निज उर व्यथा न कभी कहूंगी ।'

'रहना राज भवन में ही प्रिय
जननी मन में सुख पायेंगी ।
वहीं पालना नियम धर्म सब
नहिं बाधा तुम्हें सतायेंगी ।'

कहा भरत ने, 'बात तुम्हारी
प्रिये उचित, अच्छी भी लगती ।
लेकिन जब अग्रज हैं वन में,
सुख सुविधा यह फीकी लगती ।'

'पुर के बाहर नन्दि ग्राम में,
पावन कुटी बना कर एक।
रहने की इच्छा है मेरी,
निभा सकूं कर्त्तव्य टेक।'

'साथ कहूं रहने को कैसे
यों ही दुखी मात सारी हैं।
अनुज वधू उर्मिला निहारो
सूखी बिना नीर क्यारी है।'

'तुम जाओगी भवन छोड़ यदि
इनको प्राणहीन पाओगी।
धीरज धर दो बिदा प्रिये अब,
यह क्या ? दृग जल बरसाओगी ?'

पोंछे अश्रु, हंसी बरबस कुछ,
बोली ऊपर नयन उठा कर।
दो अनुमति पा सकूं दरश, मैं
नन्दी ग्राम कभी तो आकर।'

'यह तो है अधिकार तुम्हारा,
साथ हमारा युग युग का जब।
एक प्राण दो देह सदा,
कर्त्तव्य निभायें मिल जुलकर सब।'

'तन से दूर भले ही हों, पर
मन से साथ रहेंगे हम तुम।
शक्ति तुम्हारी मुझे मिले, अब
बनो सहारा मेरा प्रिय तुम।'

'कार्य बांट लें, राज महल का
सेवा भार प्रिये तुम ले लो।
तात पादुका निकट बैठ मैं
करूं काज, यह अवसर दे दो।'

सुन कुछ बोध हुआ मन को
कर्त्तव्य मार्ग निश्चित जाना।
मन रहा भरत की सेवा में
गृह रहना है, तन ने माना।

भरत बसे जा पुर के बाहर,
भरत प्रिया रहतीं घर तत्पर।
सेवा कर हरतीं सब का दुख,
राम बिरह का जो था गुरुतर।

निज बिरह और उससे बढ़कर,
पीड़ा देता प्रिय मन का दुख।
सुधि वन वन फिरती सीता की,
थी मिटा रही अन्तर का सुख।

सतत व्यस्तता में अन्तर
बहला कर, मन को भुला रही।
बना वेदना को साथी वह
सुधि का झूला झुला रही।

निर्झर से बहते गान नहीं,
नहि हास्य खनक प्रांगण खनके।
उल्लास कहीं जा छिपा, नहीं,
परिहास पुष्प आंगन महके।

ललित अधर का हास खो गया
चंचलता उस चंचल तन की।
तनक न थिर रहते जो नुपुर,
मौन बने गुनते कुछ मन की।

मुखर मांडवी के मधु रंजित
स्वर न सुनाई देते हैं अब।
राम सिया की सुधि आते ही
छलक नयन आते हैं जब तब।

'बहिन गई वन पिया संग में
नाथ बसे हैं स्वेच्छा से वन।
भाग्य हमारे ही में सारे
आ सिमटे हैं दुख के ये छन।'

कहूं वेदना किससे अपनी
उर की पीड़ा किसे बताऊं?
नाथ पास, फिर भी उदास,
उनको ब्रीड़ा, मैं चैन न पाऊं।'

'राम सिया घर कब लौटेंगे,
कब बीतेंगे वरस काल सम ?
विरह निशा यह कब बीतेगी ?
उगे अवध रवि, कटे दुःख तम ।'

आकुल व्याकुल अन्तर फिर भी,
तन सदा कार्य में रहता रत।
निपट अभागा मान स्वयं को,
धरती छूते नयन सदा नत।

अधर न आता दुःख हृदय का,
सहानुभूति कब किससे पाती !
रह कर मौन, पान कर आंसू
रात दिवस कर्त्तव्य निभाती।

जब बैठी होतीं राम मात
ले गोद उर्मिला वधू, दुखी।
तब राम लखन की गाथाएँ,
गा गा कर करती उन्हें सुखी।

मांत सुमित्रा रो देतीं जब
याद सिया का कर भोलापन ।
मांडवी सुनाने लगती झट
वह राम मिलन, गौरी पूजन ।

आ जाते याद उसे भी दिन
बीते बचपन में सीता संग ।
पी जाती आंसू चुपके से,
हंस कहती लक्ष्मण के रंग ढंग ।

कुछ सुना पुरानी हास कथा
परिहास लक्ष्मण देवर का ।
माता के उर में जाग्रत कर
सुधि मीठी, देती रस छलका ।

परिताप भरे उर में, कैकेई
रो देती जब व्याकुल हो ।
माण्डवी से कहती बार बार
कुछ बौराई सी आकुल हो ।

'राम सिया क्या उसी तरह
आ लिपटेंगे मेरे उर से।
बता बहू क्या भूल सकेंगे,
जो कष्ट मिले मेरे कर से?'

समझाती उन्हें धीर धर कर
राम लखन की बातें कह।
उन ही के शब्दों को देती
कुछ रूप नया, दुख जाये बह।

'मां व्यर्थ दुखी हैं आप, तात के
मन में भला कहां कुछ भेद।
भूल गईं, थे कितने आतुर वे
मिटे मात मन का यह खेद।'

'बहिन सिया ने तो विशेष कर
समझाया था मुझे यही।
छोटी मां की चिन्ता मन में,
उनको न कभी हो कष्ट कहीं।'

मां कैकेई का मनः क्लेश,
उसके विन कौन दूर करता।
विधि की इच्छा, नहिं दोष कहीं
कह बारम्बार धीर धरता।

और सभी तो तनक देर को
सुन प्रिय गाथा पीड़ा भूलें।
भाव विह्वल हो सुनें मुग्ध,
सुधि खो, अतीत में जा झूलें।

दीन मांडवी के उर का पर
भेद कहां, कब, किसने पाया।
जिसने निज वेदना छिपा कर
सबकी पीड़ा को सहलाया।

अधिक असह्य जब हो उठती
अन्तर्मन की वह कसक पीर।
बहलाती मन के छौने को,
शांत रहो मत हो अधीर।'

'सीता जीजी हैं सौंप गईं
सबकी सेवा का भार मुझे।
स्वामी भी हो मुझ पर निर्भर
तप करने में हैं जा अरुझे।'

'उनका विश्वास, भार जीजी का,
निभे लाज इतनी रखना।
हे व्यथा वेदना, मन में पल
मेरा सम्बल तुम ही बनना।'

परिधान श्वेत, नहिं तन आभूषण,
काट रही दिन कठिन वियोगिन।
साध रही साधना, नियम, व्रत,
पिया साथ में बनी तपस्विन।

नहिं जगने पाती सूर्य किरण,
रथ आ कर द्वारे लग जाता।
सरयू की जल लहरी से तो,
था उसका नित प्रति का नाता।

फिर नन्दी ग्राम पहुंच, रवि की
जब ऊषा अगवानी करती हो ।
उसी समय नित भरत चरण पर
शीश माण्डवी जा धरती हो ।

साधारण कुशल प्रश्न, चर्चा,
स्वजनों की जग व्यवहारों की ।
थी बहुत, बना देती मधुमय,
दिनचर्या, पीड़ा प्राणों की ।

झाड़ पोंछ कर कुटिया को
समिधा फल फूल धरे कर से ।
कुछ पल को पा दरस परस
सुख मान उसे उर धर हरषे ।

फिर विदा मांग कर प्रीतम से
लौटे पा कर धीरज नवीन ।
आ मात चरण में नवा माथ
आशीष लहे मन भरत लीन ।

मां निकट, कहीं उर्मिला संग,
नित्य नई रच कर रचना।
श्रुति कीर्ति और ले-सखियों को
थी गान सुनाती नित्य बना।

उल्लास भरी रागिनियां वे
प्रभु चर्चा में थीं बदल गईं।
था जहां प्यार, वैराग्य झरा,
ध्वनि बदली, करुणा छलक गई।

कार्य प्रबन्ध, भवन पुर का,
शत्रुघ्न संग मिल देखे सब।
हों दुखी न पुर के नर नारी,
प्रभु की कथा कहे जब तब।

लखन वधू में प्राण बसें,
करती नहिं पल को ओझल।
मुख भाव लखे आतुर हो अति,
छलके न कहीं नयनों से जल।

निज पीड़ा को भूल, उर्मिला
की पीड़ा का ध्यान रहे।
लखन नहीं घर निपट अकेली,
लखन प्रिया मन भान रहे।

सतत व्यस्तता में दिन बीते
क्षण भर भी विश्राम न हो।
दो पल विराम भूले से यदि
मिल जाये अति पीड़ा मन हो।

जब आये धीरे धीरे संध्या
नई कसक नित उर में पाये।
ढले मौन चुपचाप, निशा में
तारे जगा चाँदनी लाये।

रात पलक कहो कैसे लागें,
पत्थर से हैं प्राण अभागे।
स्वामी बिना सेज शैय्या पर
पड़ा विकल तन अंखियां जागें।

चंचल चपला, दीपशिखा सी,
विरह निशा में जलती प्रति छन।
पलती पलक तले सुधियां जो,
बहती जातीं अश्रु धार बन।

सोच रही, कब बीते रैना,
कब हो पिया दरश की बेरा।
मेरे लिये सदन सज्जा ये,
चकवा चकवी का सा डेरा।'

'जाग रहे होंगे स्वामी भी
सजग चित्त, श्रीराम बसे मन।
सूने पन में कुटिया के, क्या
करते याद मुझे जीवन धन?'

'पूछ नहीं सकती उनसे मैं,
बिना कहे जानूं फिर किनसे?
वैरागी जो बने स्वयं, अनु-
राग जताऊं क्या जा उनसे।'

'राम चरन में अर्पित मन, तन
राज काज हित सधा हुआ।
इस दुखिनी के लिये अहो,
उस अंतर में क्या बचा हुआ।'

अगले ही क्षण पछताती फिर,
'व्यर्थ पिया को दोष लगाती।
मेरे ही तो पूरक प्रिय हैं—
वे दीपक, मेरा उर बाती।'

'दीपक से पाकर स्नेह नवल,
है जलना सदा धर्म बाती का।
एक बार ही दरश बहुत है
चातक को ज्यों जल स्वाती का।'

'वे कुटिया में, मैं महलों में
भले विलग, पर दूर कहां हैं ?
ध्येय एक, और प्रेय एक, मन
प्राण वहीं तो, पिया जहां हैं।'

बीते निशा इसी उलझन में
स्नेह कर्म तुलते नित मन में।
ऊषा झांक जगाये सबको
चहल पहल फिर भरे भवन में।

कार्य भार में दबी दिवस भर
उभर न पाती मन की पीड़ा।
सूखे नयन न मर्म बताते
रही रात भर कितनी व्रीड़ा।

प्रखर ज्योति ले कर आता,
दिनमान निकट जब सजनी के।
अधिक तप्त कर जाता वह
निश्वास ग्रीष्म की रजनी के।

नभ देख उमड़ते नव घन को
मन ही मन है करती वर्जित।
फिर कभी शरद तो कभी शिशिर,
बढ़ती जाती नित, पीड़ा चित।'

'है पावस व्यर्थ मचल आता,
पहले से छाई दुख बदरी।
हैं अश्रु बरसते रात दिवस
करुणा जल में डूबी नगरी।'

'शरद्चन्द्र जब निकट नहीं,
इस शरदचन्द्र का फिर क्या हो?
ज्वलनशील मधुमयी ज्योत्सना,
लो निशिनाथ समेट अहो!'

'आओ शिशिर सखा छा जाओ,
अवधपुरी के प्रांगण में।
यों भी ठिठुरे मृत प्राय भाव
आ बसो यहीं उर आंगन में।'

'रितुराज करे तू क्यों समता
पतझर की, भले चला जा।
इस कुहू कुहू स्वर से अपने
मत तड़पा प्राण, चला जा।'

'रितु राज कहां ? पतझार नित्य
फिरता है यहां बिलखता।
पवन बसन्ती रहता था
जिस मग में सदा थिरकता।'

'लो, आई है फिर से विरहन
बनी चैत की यह दुपहर।
बीता फागुन बे-साख गया
अब जेठ ताप है बड़ा प्रखर।'

क्यों आते हो लौट लौट तुम,
अवधपुरी में, हे दिन मास।
अनचाहे से—जाओ जल्दी
आये अवधि रेख फिर पास।'

राम सिया पद भरत समर्पित,
भरत प्रिया भी हैं व्रत ठाने।
इधर भरत तो उधर मांडवी
दोनों तप करते मनमाने।

अवधपुरी के नर औ नारी
देख भरत को बने उदासी।
पिछली कटु गाथा सब भूले,
कहने, 'अवध बनी अब काशी।'

'माता, गंग हिलोर मनोहर,
नन्दग्राम शिव धाम उदारा।
कथा भरत की मुक्तिदायिनी
सहज करे भव सागर पारा।'

'अन्नपूर्णा भरतप्रिया, शुचि
धर्म कर्म का मन्त्र दिया है।
सुख की छाया में पनप रही
नगरी कुछ ऐसा जंत्र किया है।'

'बनी सभी के लिये सुलभ वह
सबकी अन्तर्व्यथा स्वयं सह।
कमल पत्र सम राज भवन में
सुख वैभव के बीच रहीं रह।'

'महिमा अमित भरत पत्नी की
मिथिला लली, सिया भगिनी की।
दोनों कुल की ज्योति बनी वह
रखती प्रीति रीति निज प्रिय की।'

यों कह सुन बहलाते निज मन
राम विरह दुख दशा विचित्रा।
पुरजन परिजन, पल पल, क्षण क्षण
गिनते बस दिन, ले कर पत्रा।

धीरे धीरे दस चार वर्ष
बीते, सबके मन यही हर्ष।
आते ही प्रिय रघुनन्दन के,
मिट जायेंगे सब दुख अमर्ष

भरत हृदय चिन्तित व्याकुल,
रहा एक दिन केवल बस,
समाचार भी मिला नहीं कुछ,
दूर बहुत हैं दरस परस।

'भूल गये क्या मुझको अग्रज ?
नहीं मिलेंगे क्या रघुराई ?
बीती रात इसी चिन्ता में,
प्रात माण्डवी ज्यों ही आई।

बोले भरत 'न धीरज अब है,
बिदा प्रिये मुझको दो मन से।
आये नहीं अभी तक रघुवर
जीवन वृथा, मोह नहिं तन से।'

'आस एक थी राम दरस की
अब क्यों भार सहूं व्रीड़ा का।
बीते अवधि, अवधि जीवन की
वीती, पार नहीं पीड़ा का।'

उर कांपा, अंखियां वरस उठीं
बरसे ज्यों सावन की बदरी।
बोली, 'न अकेले जा पाओगे
सौंप मुझे यह दुख की नगरी।'

'प्रिय शांत करो अपने मन को
है अभी एक दिन तो बाकी।
होंगे तृप्त नयन निश्चय ही
पाकर रघुनायक की झांकी।'

'मन कहता मेरा, जल्दी ही,
आ लेंगे लगा हृदय अपने।
पा दरस परस उर क्लेश मिटे,
पूरे होंगे उर के सपने।'

'लौटेंगी संग सीता जीजी,
हम सबके प्रेम पगी प्यारी।
प्रिय देवर लखन साथ होंगे,
सुख पायें अंखियां दुखियारी।'

सुन कर कुछ मन को हुआ बोध,
आशा फिर से उर जाग गई।
तभी पवनसुत ने आ कर,
छलका दी सुख की धार नई।

पुरवासी सुन कर समाचार,
दौड़े सब अतिशय आतुर हो।
महलों से सत्वर आ पहुंचीं,
दोनों माताएं आकुल हो।

केवल दो रहे महल में बस,
केकई औ उर्मिल, दुक्ख घने।
यह क्षुभित और वह दुखित
हृदय में भावों के थे युद्ध ठने।

जुड़ आये बालक वृद्ध सभी
जब तक विमान नीचे आया।
गुरु, सचिव, मात, पुरजन सबने
सिय राम दरश का सुख पाया।

लक्ष्मण, सीता औ सखा संग,
जब देखा प्रभु को खड़े निकट।
भूल गये तन मन की सुधि,
झट झुके चरण की ओर भरत।

कुछ भरत झुके, कुछ राम झुके
सुख अश्रु दृगों में झलक झरे।
कर बढ़ा लिया लिपटा उर में,
शुचि भाव समूह हृदय उमड़े।

मानो दो नील कमल सुन्दर
आलिंगन में बंध एक हुए।
भावसिन्धु ने ओस कणों के
मुक्ता उन पर वार दिये।

सीता भेंटी माताओं से
गुरु पत्नी, पुर वधुओं से भी।
बहिन मांडवी खड़ी निकट,
उर आस उलास भरे सब ही।

सीता भी थीं मर्यादा वश
मन था भगिनी से भेटें कब।
चरण पूज, संतोष दिला,
पकड़ा माण्डवी को 'बोलो अब।'

'आ हृदय लगो सब बात कहो,
है कहां उर्मिला भला अहो!
बतलाओ कुछ दुख की, सुख की,
बोलो जल्दी, यों चुप न रहो।'

'कब भला मौन रह सकतीं तुम
लगता मुखरा मैं, तुम गुम सुम।'
कह पाई माण्डवी इतना ही—
'जीजी सब पाया लौटीं तुम।'

'उर्मिला रही महलों में ही,
मानिनी, बहुत है व्यथा सही।
हैं लखन बहुत दिन में लौटे,
हो मान मनौवल उचित यही।'

यहां राम परितोष भरत को,
झुके गुरू चरणों की ओर।
फिर लगे मात के उर से जा,
भाव भरे, भीगे दृग कोर।

पूछ रहे 'मां, मात केकई
पड़ती नहीं यहां दिखलाई।
कारण क्या? हैं कहां बताओ?
साथ न उनको क्यों तुम लाईं।'

जाना जब, हैं राजमहल में,
तुरत चले आकुल हो कर।
भरत मात के चरणों में,
करने प्रणाम आतुर होकर।

विह्वल, विकल, वैरागिन सी,
कुछ भूली सी भ्रमित भ्रान्त।
केकई भवन में बैठी थी,
शोक मूर्ति सी श्रान्त क्लान्त।

लख दीन वदन माता का यों,
रघुराज हृदय अति विकल हुए।
'मां राम तुम्हारा घर आया'
कह आकुल हो पद कमल छुए।

'बीती अवधि पलक झपकाते,
ममता का सम्बल था तेरी।
आया हूं फिर लौट गोद अब
अपना लो मां—कैसी देरी?'

सपना है या सचमुच आये
राम, न समझी पहले भोली।
मधु वचन पड़े कानों में जब,
नव जीवन पा आंखें खोलीं।

कर बढ़ा समेटी श्यामल छवि,
रघुवर की निज आकुल उर में।
जलन मिटी, तन तपन मिटी,
मिट गई दाह सब पल भर में।

बार बार मुख चूम लगा उर,
केकई मां बलिहारी जाती।
हर्षित हो फिर, वार लाल पर
मुक्ता माणिक स्वर्ण लुटाती।

मंगा वस्त्र नव औ आभूषण,
कहा, 'राम वन वेश तजो।
जननी का अंतर सुख पाये
फिर आज राजसी वेश सजो।'

अपनी जटा संवार राम ने
किया भरत का फिर श्रृंगार।
सीता औ सौमित्र सजे, संग
सजा नगर औ राज द्वार।

भीतर भवन सुमित्रा मां के
फिर रही मांडवी व्यस्त बड़ी।
नव पुष्पों की माल गूंथ,
तोरण बंधवाती खड़ी खड़ी।

सजा उर्मिला को बरबस
सुमनों के भूषण पहना कर।
बना दिया नव दुलहिन सा
फिर लाई लक्ष्मण को जाकर।

'ले लो लखन लला निज थाती
कसर कहीं यदि, तो फिर बोलो।
बहुत दिनों घूमे स्वतंत्र वन,
अब फिर से बंधन में हो लो।'

हंस कहें लखन, 'कब था स्वतंत्र
मैं दूर भला सबसे कब था ?
इस स्नेह रज्जु के बंधन से
भाभी मन मुक्त भला कब था ?'

परिहास हास रस गया छलक,
खनके नूपुर सुख गया निखर।
बस मिलन लालसा रही चित्त,
सब वियोग दुख गया बिखर।

फिर मन्थर गति, निज भवन ओर
माण्डवी चली ले कम्पित मन।
पा, पति को निज आगार बीच,
पल एक, अंग दौड़ी सिहरन।

मधु स्मृतियों के साथ जगी
ब्रिरह व्यथा पीड़ा गहरी।
लगा स्वप्न सा हो जैसे,
उर में निश्वास उठी, ठहरी।

दोनों ही मौन रहे कुछ पल,
अपने भावों को तोल रहे।
अनुराग भरे नयनों से निज,
उर की परतों को खोल रहे।

श्वेत, शुभ्र, शुचि सज्जा में,
माण्डवी रूप रति का जैसे।
अतनु पती पा विरह भरी,
कलिका सी कुम्हलाई जैसे।

निज सज्जा लख, प्राणप्रिया का,
निरख तपस्विन का सा साज।
भरत नयन कुछ झुके सकुच,
उर अपराधी से बने आज।

साकार हुई मन में वर्षों की,
उस मनस्विनी की पीड़ा।
बांध बाहुओं में उर से ला,
खोई सब वह दुविधा व्रीड़ा।

पूर्ण काम हैं बने भरत,
सजि हरषे जिनको स्वयं राम।
होता फिर से रति मदन मिलन,
आनन्द अगम, युग द्युति ललाम।

उर पुलक, नहीं तन आकुलता,
हैं आज शान्त वे मुखर नयन।
व्याकुलता की सीमा लांघी,
हो रहा मौन वह चंचल मन।

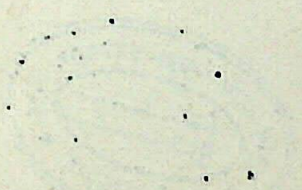
छलके कैसे, आकंठ भरी
प्रिय के अनुराग, हृदय गगरी।
हैं गान अगम उर अन्तर के,
नहिं उठे लहर, सरिता गहरी।

नहिं प्रश्न मनाने मनने का,
कुछ कहने का कुछ सुनने का,
केवल सन्तोष भरा उर में,
अपने प्रियतम से मिलने का।

मन साथ दूर था तन केवल
दोनों के उर विश्वास प्रबल।
अब हुए एक तन मन दोनों
बंध गये नेह की डोर सबल।

उर को तो परखा है उर ने,
सरिता ने बांधा सागर को।
है कौन किसे पा धन्य हुआ
नहिं ज्ञात स्वयं के अन्तर को।

हैं भरत माण्डवी एक बने
अंतर दोनों के नेह सने।
नहिं कहीं चपलता भावों की
बस पूर्ण समर्पण भाव घने।








महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी
पुस्त०
भारती पुस्तकालय